ज्ञानामृत

संकलनकर्त्ता, संपादक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11

पंचकूला-134112 (हरियाणा)

फोन : 0172-2567845

मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. +91-94683 40497**
मुद्रक :

दो शब्द

मेरी प्रिय आत्माओ! ज्ञान चार प्रकार का होता है। पहला मिथ्या ज्ञान इसको भ्रांति भी कहते हैं। जैसे संसार में दुःख अधिक हैं और सुख कम। यह मिथ्या ज्ञान है। दूसरा संशय ज्ञान—जैसे अंधेरे में रस्सी को साँप समझना। तीसरा शाब्दिक ज्ञान—जैसे आप शब्द तो ठीक-ठीक बोलते हैं परन्तु अमल नहीं करते हैं। जैसे क्रोध नहीं करना चाहिये और झूठ नहीं बोलना चाहिये। फिर भी हम क्रोध करते और झूठ बोलते हैं। चौथा यथार्थ ज्ञान—जैसे जो हम बोलें वैसे ही कार्य करें अथवा जो वस्तु जैसी हो वैसी ही हम समझें इसे यथार्थ ज्ञान कहते हैं।

वस्तुतः संसार में हमारे दुःख का मुख्य कारण है अज्ञान। प्रस्तुत पुस्तक में मैंने अनेक पुस्तकों के अध्ययन एवं अनुशीलन तथा विभिन्न समाचार पत्रों की विगत 50 वर्षों की कटिंग्ज (cuttings) को उद्धृत करके कड़ी मेहनत एवं सच्ची लगन के साथ तैयार किया है। इसमें विभिन्न महापुरुषों के जीवन के प्रेरक-प्रसंगों का वर्णन किया है। वस्तुतः ये प्रेरक-प्रसंग यथार्थ ज्ञान से ओतप्रोत हैं और पाठकों के लिये ज्ञानामृत सिद्ध होंगे। जैसे अंधेरे में पड़े हुए कांच के टुकड़ों को जब शशि किरणें चुपचाप धरती पर आकर चूमती हैं तो वे हीरकनी की भांति दिखाई देने लगते हैं। इसी भाँति किसी कलाकार की बहुरंगीन कल्पना ऊर्जा जब काले अक्षरों को स्पर्श करती है तो वे स्वर्णिम बनकर अमृत दे जाते हैं। जिन्हें देखने के लिए युग आँखें सदा तरसती हैं। यही बात प्रस्तुत पुस्तक के विषय में भी पूर्णतः चरितार्थ होती है। मैंने तभी इसका नाम 'ज्ञानामृत' रखा है और इसमें ऐसे अनमोल रत्न जोड़ने का प्रयास किया है जिनका मोल ताजमहल में जड़े हुये रत्नों से भी कहीं अधिक है। हम देखते हैं कि जैसे एक मधुमक्खी विभिन्न पुष्पों से मकरंद एकत्रित करके शहद के छत्ते का निर्माण करती है। इसी प्रकार मैंने भी अनेक महापुरुषों के जीवन के मुख्य प्रेरकप्रसंगों को चुनचुन कर प्रस्तुत पुस्तक के रूप में एक खूबसूरत फूलों का गुलदस्ता प्रस्तुत किया है जिसे आप पढ़िए, समझिए और आनन्द विभोर हो जाइए।

इस पुस्तक का अध्ययन करके पाठकों को यथार्थ ज्ञान की अनुभूति होगी और यह पुस्तक उनके जीवन की प्रेरणा स्रोत सिद्ध होगी। मेरा पाठकों से सविनय निवेदन है कि वे प्रस्तुत पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ें और अपने आचरण में लायें ताकि वे भी सच्चे अर्थों में मानव बन सकें।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचन्द चौहान, रोशन लाल अग्रवाल, सत्यपाल मोदी, नरेश बंसल एवं जय किशन आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। विशेषतः श्री लालचन्द चौहान जी का जिन्होंने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। जिस अचिन्त्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तमान दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ और अपूर्ण है। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से अनुरोध है कि उसको निम्नलिखित पते पर लिखकर भेजने की कृपा करे, ताकि अगले संस्करण में उन्हें दूर किया जा सके। धन्यवाद।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 14.1.2017

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135,
सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

श्री धर्मपाल कपूर जी द्वारा अनेक पुस्तकों को प्रकाशित करवा निःशुल्क वितरण किया जा चुका है। ये बड़ी लगन और कर्त्तव्य निष्ठा के साथ पुस्तकों के विषयों का चयन करते हैं और विद्वानों के ग्रंथों का स्वाध्याय कर उनमें से शिक्षाप्रद प्रसंगों का चयन करके अपनी पुस्तक में स्थान देते हैं। स्वाध्याय से ही ज्ञान बढ़ता है। इसका एक लाभ यह होता है कि अनेक पुस्तकों को पढ़ने के स्थान पर एक पुस्तक में ही महत्वपूर्ण ज्ञानवर्धक सामग्री प्राप्त हो जाती है। श्री धर्मपाल कपूर जी की पुस्तकों में बहुत पुस्तकों से सामग्री संकलित की जाती है, उससे पुस्तक बड़ी ज्ञानवर्धक बन जाती है। एक प्रकार से गागर में सागर वाली कहावत सिद्ध हो जाती है। ज्ञानामृत पुस्तक में महापुरुषों के जीवन की शिक्षाप्रद घटनाओं का वर्णन किया है। इनसे अच्छी शिक्षा को ग्रहण कर लेना चाहिए। कहावत है कि यदि हीरा गन्दी नाली में पड़ा हो तो उसे निकाल लेना चाहिए।

जैसे अष्टावक्र जी कुरूप थे परन्तु विद्वान् थे। उनका रूप कुरुप होते हुए भी वे अपनी विद्वता के कारण सम्मानित थे। महात्मा बुद्ध के जीवन की कई घटनाएं मनुष्य जीवन के लिये ज्ञानवर्धक हैं। उनका अहिंसा का सन्देश सभी मानव के लिए था। आचार्य चाणक्य ने कहा कि आदमी की पहचान गुण और बुद्धि से ही होती है। आदिशंकराचार्य ने ब्रह्म के सच्चे ज्ञान को लोगों के सामने रखा। कबीर जी ने दोहों के माध्यम से बहुत ही शिक्षाप्रद बातों को कहा।

गुरु नानक जी ने मानव के लिये अपनी जीवन की कई घटनाओं का वर्णन किया है। महर्षि दयानन्द के जीवन की घटनाएं मनुष्य को झकझोर देने वाली हैं कितने थोड़े समय में समाजसुधार का कार्य किया। यह एक सामान्य व्यक्ति का कार्य नहीं, उनके जीवन की इतनी घटनायें हैं जो मनुष्य का कायाकल्प कर देती हैं। महर्षि दयानन्द ने विश्व की समग्र उन्नति के लिये वेद विद्या का आजीवन प्रचार प्रसार किया। वेदों का हिन्दी में भाष्य किया। यह उनकी देन है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेद सब सत्य विद्याओं का

पुस्तक है । वेद निर्भ्रान्त हैं, वेद स्वतः प्रमाण है, वेद का प्रमाण वेद ही है । वेद अनन्त विद्याओं का भण्डार है ।

स्वामी श्रद्धानन्द जिन्होंने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की, शुद्धिकरण का कार्य किया । सब अवगुणों को त्याग कर त्यागमूर्ति बन गये । उनके जीवन से बहुत मानवता की शिक्षाएं मिलती हैं । स्वामी विवेकानन्द जिन्होंने विदेशों में जाकर अपनी संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया । उनके जीवन से बहुत कुछ सीखने को मिलता है । अन्य विद्वान् स्वामी रामतीर्थ आदि की भी कुछ घटनाओं का वर्णन पुस्तक में किया है । इसमें कुछ फुटकर प्रसंगों में दृष्टांत दिये गये हैं वे कुछ वास्तविक घटनाओं पर आधारित हो सके हैं और कुछ काल्पनिक घटनाओं का वर्णन ज्ञान वर्धन व उनसे शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से दिये गये हैं । कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो वैदिक मान्यताओं के अनुरूप तो नहीं हैं, परन्तु उनको कुछ ग्रहण करने की दृष्टि से देखा जाये और पढ़ा जाए तो वे शिक्षा ग्रहण के लिये लाभप्रद हैं । इसमें जो शिक्षाप्रद लगे उसे ग्रहण कर लेना शेष को छोड़ देना । यह लेखक की पसन्द के प्रसंग हैं, उन्होंने शिक्षाप्रद दृष्टि से इस पुस्तक में स्थान दिया है । पढ़ने वाले का अपना दृष्टिकोण होता है, वह अपनी दृष्टि से उसका अवलोकन करता है ।

पुस्तक के लिखने में लेखक ने अपना श्रम, समय, धन और मन लगाया और परोपकार की भावना से इसका लेखन किया है । कभी किसी का परिश्रम निष्फल नहीं जाता यह ईश्वर का नियम है । इस पुस्तक से पाठकों के ज्ञान में वृद्धि होगी ऐसा मेरा विश्वास है ।

मैं श्री धर्मपाल कपूर जी के इस पुरुषार्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ । ईश्वर से इनकी दीर्घायु की कामना करता हूँ जिससे ये निरन्तर अपने कार्य में लगे रहें और इसी प्रकार समाज सेवा करते रहें ।

लालचन्द चौहान
591/12, पंचकूला (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9814881501
फोन : 0172-2563079

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	अष्टावक्र	1
2.	महात्मा बुद्ध	4
3.	आचार्य चाणक्य	20
4.	आदिशंकराचार्य	24
5.	कबीरदास	26
6.	गुरु नानक देव	28
7.	महर्षि दयानंद	32
8.	स्वामी श्रद्धानन्द	42
9.	स्वामी विवेकानन्द	49
10.	स्वामी रामतीर्थ	57
11.	पंडित राम प्रसाद 'बिस्मिल'	62
12.	सुभाष चन्द्र बोस	64
13.	सरदार पटेल	68
14.	लाल बहादुर शास्त्री	74
15.	संत राबिया	78
16.	फुटकर	81

1. अष्टावक्र

1. यथार्थ ज्ञान

ज्ञान किसको मिलता है? जो श्रद्धाभाव से शरणागत हो और अपना आप समर्पित करके गुरु के समक्ष कहे कि मुझे ज्ञान दें, तभी तत्त्वदर्शन होता है। दूसरी मर्यादा यह कि जब गुरु तुम्हें ज्ञान देना समाप्त करे यानी पूर्णाहूति करे तो शिष्य होने के नाते गुरु चरणों में भेंट समर्पित करें। भेंट क्या हो? जो वस्तु तुम्हें सबसे प्रिय हो वही भेंट करें।

राजा जनक अष्टावक्र जी के पास ज्ञान लेने आए तो राजा जनक ने मर्यादानुसार फूल माला गुरु चरणों में अर्पित करके पूजन किया और आरती उतारी। फिर बोले, ''मैं आपको क्या भेंट दूँ?'' तब अष्टावक्र जी बोले, ''भेंट अपनी इच्छा अनुसार दी जाती है।''

यह सुन कर राजा बोले, ''प्रभु मैंने अपना तन, मन, धन सब आपको दिया।''गुरु बोले, ''मुझे स्वीकार है।'' फिर सत्संग आरम्भ हुआ। जब समाप्ति हुई, राजा प्रणाम करके चलने लगे तो तब अष्टावक्र बोले कि राजन कहाँ चले? तो राजा बोले, ''अपने घर।'' गुरु ने कहा, ''इतनी जल्दी बदल गए, अभी तो तुमने सब कुछ मुझे अर्पित कर दिया था फिर अब मेरी इज़ाज़त के बग़ैर कैसे जाओगे?''

राजा को एहसास हो गया कि हाँ महल तो मेरा नहीं। फिर अष्टावक्र जी बोले, ''राजा तुमने अभी और भी बेईमानी की है, तुमने मुझे मन भी दिया था, फिर तुम्हारे अंदर यह संकल्प कैसे उठा कि तुम यहाँ से जाओ? बात पैसे की नहीं और न महलों की है। जब तुमने कहा कि मन आपको दिया तो दिया। तो इस मन में

आज के बाद संकल्प वही उठता जो मैं कहता । मेरी इच्छा के बिना कोई विचार तुम्हारे मन में न उठे ।''

गुरु हो अष्टावक्र जैसा और शिष्य हो राजा जनक जैसा, तभी सुनते-सुनते आत्मभाव की स्थिति में पहुँच कर शिवोऽहम् की अनुभूति होती है । फिर गुरु, गुरु न रहा और शिष्य, शिष्य न रहा । जैसे जीव ईश्वर का भेद मिट गया । अब न कोई गुरु न कोई शिष्य । जब तक साधना के मार्ग पर चल रहे हो तब तक गुरु की पदवी बहुत ऊँची मानी जाती है । शिष्य अपनी श्रद्धा, अपना प्यार, अपना समर्पण, अपनी पुकार व प्रार्थना गुरु के समक्ष रखता है और गुरु करुणा व प्यार करके उसे सन्मार्ग पर चलाता है ।

2. अष्टावक्र और शास्त्रार्थ

वैदिक युग में देवल एक ज्ञानी ऋषि थे । बचपन से ही उनके आठ अंग टेढ़े थे, इसलिए वह 'अष्टावक्र' कहलाते थे । उनके पिता मुनि कोहल वेदों के प्रकांड पंडित थे । उन दिनों मिथिला विद्या ज्ञान की नगरी थी । राजा जनक वहाँ के राजा थे । राजा जनक के दरबार में विद्वानों से निरंतर शास्त्रार्थ हुआ करते थे । राजा जनक का सभा-पंडित बंदीजन बड़ा विद्वान् था, परन्तु स्वभाव से बड़ा क्रूर था । शास्त्रार्थ में जो कोई उससे पराजित हो जाता, उसे वह अपमानित करके विद्वत् मंडली से निकाल देता था । अष्टावक्र के पिता मुनि कोहल भी बंदीजन से शास्त्रार्थ में हार गए और पंडित मंडली से निकाल दिए गए ।

पिता के अपमान से दुःखी होकर किशोर अवस्था में ही अष्टावक्र ने बंदी को परास्त करने का निश्चय किया और राजपंडित बंदीजन से शास्त्रचर्चा करने के लिए राजमार्ग पर चल पड़ा । वह अपनी धुन में मस्त मटकता जा रहा था कि दो अश्वारोही

सैनिकों ने उसे रोका, कहा, ''ऐ किशोर हट जाओ यहाँ से?'' किशोर अष्टावक्र ने ऊँची आवाज़ में कहा, ''क्या राजमार्ग पर चलने का अधिकार पथिक को नहीं है?'' ''राजा जनक का रथ आ रहा है, राजा के लिए मार्ग छोड़ दो।'' ''तुम मूर्ख हो, तुम्हारा राजा नीतिवाला नहीं दीखता।'' ''कैसे?'' सैनिक ने पूछा। साथ ही रथ में बैठे राजा जनक ने पूछा, ''क्यों आयुष्मान?'' अष्टावक्र ने कहा, ''नीति है वृद्ध, अपंग, ज्ञानी, बालक, रोगी, शव के लिए राजा को भी मार्ग छोड़ देना चाहिये।''

''तुम इनमें से कौन हो? आयुष्मान्!'' जनक ने पूछा। ''मैं अशक्त बालक परन्तु ज्ञानी हूँ।'' तुम्हारे लिए राजमार्ग छोड़ रहा हूँ—कहकर जनक ने राजमार्ग छोड़ दिया। पूछा, ''तुम कहाँ जा रहे हो?'' 'बंदीजन से शास्त्रार्थ करने' अष्टावक्र का उत्तर था।

अष्टावक्र यज्ञशाला के द्वार पर पहुँचा। द्वारपाल ने रोककर कहा, 'राजा केवल वृद्ध विद्वानों ब्राह्मणों से मिलते हैं।'' ''मैं शास्त्रज्ञ हूँ, बंदीजन से शास्त्रार्थ करूँगा। ज्ञानी होने के लिए बड़ी आयु की आवश्यकता नहीं होती। राजा से कह दो वही बालक मिलने आया है जो मार्ग में मिला था।'' जनक ने बुलवा भेजा। कहा, ''पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।'' ''पूछिए।'' ''जन्म के समय कौन-सी चीज हिलती-डुलती नहीं।'' 'अंडा' अष्टावक्र का उत्तर था। मेरा दूसरा प्रश्न है, ''सोते समय कौन-सा जानवर आँखें बंद नहीं करता।'' अष्टावक्र का उत्तर था, ''मछली।'' राजा ने बंदीजन से शास्त्रार्थ करने की अनुमति दे दी, परन्तु बंदीजन की शर्त भी बता दी कि हारने पर अपमानित कर पंडित मंडली से निकाल दिए जाओगे।

बंदीजन ने कहा, ''तुम किशोर हो, प्रश्न करो।'' अष्टावक्र ने कहा, ''हम संख्या पर शास्त्रार्थ करेंगे—एक ब्रह्म है।'' बंदीजन

ने कहा–''ब्रह्म और आत्मा दो हैं ।'' अष्टावक्र ! ''पृथ्वी, आकाश, पाताल तीन हैं, स्वप्न, जागृति, सुषुप्ति तीन हैं, सत्त्व, रजस्, तमस तीन हैं, जीव, जगत और ब्रह्म तीन हैं–बंदीजन !''

''अष्टावक्र चार दिशाएँ हैं ।'' ''पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पाँच भूत हैं–बंदीजन !'' ''छह शत्रु–अहंकार, मोह, क्रोध, लोभ, काम और मत्सर हैं अष्टावक्र'' ! ''भू, भुवः, स्वः, मह, तप, जन और सत सात लोक हैं बंदीजन !'' ''पाँच महाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार आठ प्रवृत्तियाँ हैं अष्टावक्र ।'' ''तो बंदीजन दो आँखें, दो नासिका-छिद्र, दो कान , एक जीभ, मल, मूत्र द्वार ये नौ इंद्रियाँ हैं बंदीजन ।''''अष्टावक्र, एक नाभि और-दस इन्द्रियाँ हैं ।'' ''बंदीजन एक मन और मिला लो ग्यारह इंद्रियाँ हैं ।'' ''अष्टावक्र चैत्र से फाल्गुन तक द्वादश-बारह मास हैं ।'' ''बंदीजन यह तो सूर्य का राशि चक्र हुआ । द्वादश आदित्यों से एक संवत मास और उनके चरण । त्रयोदश बोलो बंदीजन ।''

बंदीजन के माथे पर पसीने की बूँदें आ गई । अष्टावक्र ने कहा, ''त्रयोदश बोलो बंदीजन या हार मानो ।'' बंदीजन निरुत्तर था । राजा जनक ने अष्टावक्र को विजयी घोषित किया । बंदीजन पराजित हो पंडित मंडली से निकाल दिये गये । परास्त पंडितों और अष्टावक्र के पिता मुनि कोहल की पुनः प्रतिष्ठा हुई । अष्टावक्र ने अपनी ज्ञान गरिमा से सर्वत्र प्रतिष्ठा पाई ।

2. महात्मा बुद्ध

1. दान की महिमा

महात्मा बुद्ध का जब पाटलीपुत्र में शुभागमन हुआ तो हर व्यक्ति अपनी-अपनी सांपत्तिक स्थिति के अनुसार उन्हें उपहार देने की योजना बनाने लगा । राजा बिम्बिसार ने भी कीमती हीरे, मोती

और रत्न इन्हें पेश किए। बुद्ध ने सबको एक हाथ से सहर्ष स्वीकार किया।

इसके बाद मंत्रियों, सेठों, साहूकारों ने अपने-अपने उपहार उन्हें अर्पित किए और बुद्ध ने उन सबको एक हाथ से स्वीकार कर लिया। इतने में एक बुढ़िया लाठी टेकते वहाँ आई। बुद्ध को प्रणाम कर वह बोली, ''भगवन् जिस समय आपके आने का समाचार मुझे मिला, उस समय मैं यह अनार खा रही थी। मेरे पास कोई दूसरी चीज न होने के कारण मैं इस अधखाए फल को ही ले आई हूँ। यदि आप मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करें तो मैं अहोभाग्य समझूँगी।

महात्मा बुद्ध ने दोनों हाथ सामने कर वह फल ग्रहण किया। राजा बिम्बिसार ने जब यह देखा तो उन्होंने बुद्ध से कहा, ''भगवन्, क्षमा करें। एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। हम सबने आपको कीमती और बड़े-बड़े उपहार दिए जिन्हें आपने एक हाथ से ग्रहण किया लेकिन इस बुढ़िया द्वारा दिए गए छोटे एवं जूठे फल को आपने दोनों हाथों से ग्रहण किया, ऐसा क्यों?''

यह सुनकर बुद्ध मुस्कराए और बोले, राजन! आप सबने अवश्य बहुमूल्य उपहार दिए हैं किन्तु यह सब आपकी सम्पत्ति का दसवाँ हिस्सा भी नहीं है। आपने यह दान दीनों और ग़रीबों की भलाई के लिए नहीं किया है। इसलिए आपका यह दान सात्विक दान की श्रेणी में नहीं आ सकता। इसके विपरीत इस बुढ़िया ने अपने मुँह का कौर ही मुझे दे डाला है। भले ही यह बुढ़िया निर्धन है लेकिन इसे संपत्ति की कोई लालसा नहीं है। यही कारण है कि इसका दान मैंने खुले हृदय से, दोनों हाथों से स्वीकार किया है।

2. आदमी की कीमत

एक बार एक आदमी महात्मा बुद्ध के पास पहुँचा। उसने पूछा, ''प्रभु मुझे यह जीवन क्यों मिला? इतनी बड़ी दुनियाँ में मेरी

क्या कीमत है?'' बुद्ध उसकी बात सुनकर मुस्कराए और उसे एक चमकीला पत्थर देते हुए बोले, ''जाओ, पहले इस पत्थर का मूल्य पता करके आओ। परन्तु ध्यान रहे, इसे बेचना नहीं, केवल मूल्य पता करना है।''

वह आदमी उस पत्थर को लेकर एक आम वाले के पास पहुँचा और उसे पत्थर दिखाते हुए बोला, ''इसकी कीमत क्या होगी? आम वाला पत्थर की चमक देखकर समझ गया कि अवश्य ही यह कोई कीमती पत्थर है लेकिन वह बनावटी आवाज़ में बोला,''देखने में तो कुछ विशेष नहीं लगता, परन्तु मैं इसके बदले 10 आम दे सकता हूँ।''

वह आदमी आगे बढ़ गया। सामने एक सब्जी वाला था। उसने उससे पत्थर का दाम पूछा। सब्जी वाला बोला, ''मैं इस पत्थर के बदले एक बोरी आलू दे सकता हूँ।''

आदमी आगे चल पड़ा। उसे लगा पत्थर कीमती है, किसी जौहरी से इसकी कीमत पता करनी चाहिये। वह एक जौहरी की दुकान पर पहुँचा और उसकी कीमत पूछी। जौहरी उसे देखते ही पहचान गया कि यह बहुत कीमती रूबी पत्थर है, जो किस्मत वाले को मिलता है। वह बोला, ''पत्थर मुझे दे दो और मुझसे 1 लाख रुपये ले लो।''

उस आदमी को अब पत्थर की कीमत का अन्दाजा हो गया था। वह बुद्ध के पास लौटने के लिए मुड़ा। जौहरी उसे रोकते हुए बोला, ''अरे रुको तो भाई, मैं इसके 50 लाख दे सकता हूँ।''लेकिन वह आदमी फिर भी नहीं रुका। जौहरी किसी कीमत पर उस पत्थर को अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। वह उछल कर उसके आगे आ गया और हाथ जोड़ कर बोला,''तुम यह पत्थर मुझे दे दो मैं 1 करोड़ रुपए देने को तैयार हूँ।''

वह आदमी जौहरी से पीछा छुड़ा कर जाने लगा। जौहरी ने पीछे से आवाज़ लगाई, ''ये बहुत कीमती पत्थर है, अनमोल है।

तुम जितने पैसे कहोगे, मैं दे दूँगा।'' यह सुनकर वह आदमी हैरान-परेशान हो गया। वह सीधा बुद्ध के पास पहुँचा और उन्हें पत्थर वापस करते हुए सारी बात कह सुनाई।

बुद्ध मुस्करा कर बोले, ''आम वाले ने इसकी कीमत 10 आम लगाई, सब्जी वाले ने 'एक बोरी आलू' और जौहरी ने बताया कि 'अनमोल है'। इस पत्थर के गुण जिसने जितने समझे, उसने उसकी उतनी कीमत लगाई। ऐसे ही यह जीवन है। हर आदमी एक हीरे के समान हैं। दुनियाँ उसे जितना पहचान पाती है, उसे उतनी महत्ता देती है.... लेकिन आदमी और हीरे में एक फर्क यह है कि हीरे को कोई दूसरा तराशता है और आदमी को स्वयं को तराशना पड़ता है।.... तुम भी अपने स्वयं को तराश कर अपनी चमक बिखेरो, तुम्हें भी तुम्हारी कीमत बताने वाले मिल ही जाएंगे।

3. सर्वोच्च शक्ति क्या है?

पत्थर की एक बड़ी चट्टान को देखकर शिष्य ने बुद्ध से पूछा भगवन्! क्या इस चट्टान पर किसी का शासन सम्भव है?

'पत्थर से कई गुनी शक्ति लोहे में होती है। इसीलिए लोहा पत्थर को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देता है।' महात्मा बुद्ध ने शिष्य की जिज्ञासा को शान्त करते हुए उत्तर दिया। तो फिर लोहे से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ होगी? शिष्य ने प्रश्न किया–'क्यों नहीं? अग्नि है। जो लोहे के अहं को गलाकर द्रव्य रूप में बना देती है।''

'अग्नि की विकराल लपटों के सम्मुख किसी की क्या चल सकती होगी?'

'केवल जल है जो उसकी उष्णता को शीतल कर देता है।'

'जल से टकराने की फिर किसमें ताकत होगी। प्रतिवर्ष बाढ़ तथा अति वृष्टि द्वारा जन और धन की अपार हानि होती है।'

'ऐसा क्यों सोचते हो वत्स! इस संसार में एक से एक शक्तिशाली पड़े हैं। वायु का प्रवाह जलधारा की दिशा बदल देता

है । संसार का प्रत्येक प्राणी वायु के महत्त्व को जानता है क्योंकि इसके बिना उसके जीवन का महत्त्व ही क्या है ?'

अब महात्मा बुद्ध को हँसी आ गई उन्होंने कहा—'मनुष्य की संकल्प शक्ति द्वारा वायु भी वश में हो जाती है । मानव की यह शक्ति ही सबसे बड़ी है ।

4. आज जियेंगे तो कल सुनेंगे

धर्म प्रचार के लिये महात्मा बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य कलम्भन को भेजते समय आशीर्वाद देकर कहा— ''वत्स ! संसार बड़ा दुःखी है, लोग अज्ञानवश कुरीतियों में जकड़े पड़े हैं, जाओ उन्हें जाग्रति का सन्देश दो, इससे बढ़कर और कोई पुण्य नहीं कि तुम उन्हें आत्मकल्याण का मार्ग दिखाओ ।

कलम्भन ने तथागत की चरण धूलि मस्तक से लगाई और वहाँ से विदा हो लिया । दिन छिपने में अभी देर थी । कलम्भन एक गाँव पहुँचे । उसमें अनेक लोग कृशकाय बीमार पड़े थे । वहाँ की स्त्रियाँ मलिन वेश में पुरुषों के काम कर रही थीं । बच्चों के शरीर सूखे हुए थे । लगता था, इनको न भरपेट अन्न मिलता है और न बीमारियों से लड़ने को औषधियाँ । शिक्षा की दृष्टि से उनमें कोई चेतना दिखाई नहीं दे रही थी । सब दुःखी दिखाई दे रहे थे ।

कलम्भन को अपनी सेवा का स्थान मिल गया । एक झोंपड़ी के सहारे अपना सामान टिकाकर वह विश्राम की मुद्रा में बैठ गये और सारे गाँव में यह समाचार फैला दिया—''महात्मा बुद्ध के शिष्य कलम्भन तुम लोगों के दुःख दूर करने आये हैं, तुम लोगों को मुक्ति का मार्ग बताने पधारे हैं ।''

बिच्छू का विष शरीर में जिस गति से फैलता है उसी शीघ्रता से यह बात सारे गाँव में फैल गई । ग्रामीणों के हर्ष का ठिकाना न रहा । सबने कलम्भन के लिये विश्राम के लिए सुन्दर स्थान की

व्यवस्था कर दी । रात बड़ी शांति और प्रसन्नता से बीती ।

प्रातःकाल बौद्ध-भिक्षु जब तक ध्यान, पूजन समाप्त करें, तब तक द्वार ग्रामवासियों की भीड़ से भर गया । कलम्भन बाहर निकले, वह रूढ़िग्रस्त, अशिक्षा और दारिद्रय से ग्रसित चेहरे देखते ही उनके मन में घृणा फैल गई परन्तु उन्होंने उसकी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की । आखिर धर्मोपदेश के लिये आये थे । इतनी सहिष्णुता भी न होती तो कौन उन्हें इस महान् कार्य के लिए भेजता ।

सबके सामने बैठकर कलम्भन ने उपदेश आरम्भ किया– ''धर्मं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि ।'' ग्रामीण जनों की समझ में न तो धर्म आया न बुद्ध और न संघ । जैसे आये थे, बेचारे वैसे ही घरों को लौट गये ।

कलम्भन ने एक नहीं शत्-शत् सभायें आयोजित की किन्तु ग्रामीण-जनों की न निराशा दूर हुई न दारिद्रय । बेचारे धर्म को समझने की स्थिति में होते तो अपनी स्थिति आप न समझ लेते ।

कलम्भन हताश तथागत के पास लौटकर बोले–''निष्फल भगवन् ! हमारा उपदेश कुछ काम नहीं आया । ग्रामीण जनों ने एक भी बात तो नहीं सुनीं ।'' महात्मा बुद्ध बड़ी देर तक सोचते रहे । फिर उन्होंने आचार्य जीवन और शिष्य सनातन को बुलाकर कहा–''देखो तुम उस ग्राम में जाओ, औषधि और शिक्षा का प्रबन्ध करो ।''

तथागत की आशा मानकर शिष्य सनातन और आचार्य जीवन वहाँ से चल पड़े । तब कलम्भन ने प्रश्न किया–भगवन् ! आपने इन्हें तो धर्म उपदेश के लिये कहा ही नहीं । तथागत गम्भीर हो गये और बोले–समाज की प्राथमिक आवश्यकताओं और सुधार की मूल प्रक्रिया को अपनाये बिना धर्मोपदेश सम्भव नहीं । आज की आवश्यकता शिक्षा है, स्वास्थ्य है, कुरीतियों के जंजाल से मुक्ति

है। अभी उन्हें जीवन की आशा चाहिये। आज जियेंगे तो कल सुनेंगे भी।

कलम्भन यह सुनकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ और धर्मोपदेश के स्थान पर समाज सेवा के कार्यों में जुट गया।

5. आत्म साक्षात्कार

सुजाता ने खीर दी, बुद्ध ने उसे ग्रहण कर परम सन्तोष का अनुभव किया। उस दिन उनकी जो समाधि लगी तो फिर सातवें दिन जाकर टूटी। जब वे उठे, उन्हें आत्मसाक्षात्कार हो चुका था।

नेरंजरा नदी के तट पर प्रसन्न मुख आसीन महात्मा बुद्ध को देखने गई सुजाता बड़ी विस्मित हो रही थी कि यह सात दिन तक एक ही आसन पर कैसे बैठे रहे? तभी सामने से एक शव लिये जाते हुए कुछ व्यक्ति दिखाई दिये। उस शव को देखते ही महात्मा बुद्ध हँसने लगे। सुजाता ने प्रश्न किया—योगिराज! कल तक तो आप शव देखकर दुःखी हो जाते थे, आज वह दुःख कहाँ चला गया?

महात्मा बुद्ध ने कहा—बालिके! सुख-दुःख व्यक्ति की कल्पना मात्र है। कल तक जड़ वस्तुओं में आसक्ति होने के कारण यह भय था कि कहीं यह न छूट जाये, वह न बिछुड़ जाये। यह भय ही दुःख का कारण था, आज मैंने जान लिया कि जो जड़ है, उसका तो गुण ही परिवर्तन है, परन्तु जिसके लिये दुःख करते हैं, वह न तो परिवर्तनशील है और न नाशवान्। अब तू ही बता जो सनातन वस्तु पा ले, उसे नाशवान् वस्तुओं का क्या दुःख? सुजाता यह उत्तर सुनकर प्रसन्न हुई और स्वयं भी आत्मचिन्तन में लग गई।

6. मृत्यु जीवन का यथार्थ

गौतमी का इकलौता पुत्र मर गया। शोक से विह्वल होकर वह लाश को लिए हुए महात्मा बुद्ध के पास पहुँची। उसे आशा थी कि तथागत बालक को पुनः जीवित कर देंगे।

बुद्ध ने गौतमी को सान्त्वना देते हुए कहा—किसी ऐसे घर से थोड़ा जल माँग लाओ, जिसके घर में कभी कोई मृत्यु न हुई हो। उस जल को अभिमंत्रित करके तुम्हारे पुत्र का अभिसिंचन करूँगा और वह पुनः जीवित हो उठेगा। गौतमी जल प्राप्त करने के लिए द्वार-द्वार पर घूमने लगी, परन्तु कोई घर ऐसा न मिला—जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। निराश होकर वह वापस लौट आई।

तथागत ने कहा—भद्रे तुमने देखा, इस संसार में कोई घर ऐसा नहीं जिसमें किसी की मृत्यु न हुई हो। इसी प्रकार कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसे मरना न पड़े। आज या कल, सभी अपने-अपने समय पर मरते हैं फिर उस अन्तिपन्न प्रकृति फन्द में फंसे हुए हम लोगों में क्यों किसी के लिए शोक करना चाहिए। गौतमी का बोध जाग गया। वह मृत पुत्र का संस्कार करके घर लौट गई। शोक को उसने विवेक द्वारा शान्त कर दिया।

7. भावनिष्ठा का भूखा परमात्मा

शौरपुच्छ नामक बनिक ने एक बार महात्मा बुद्ध से कहा—भगवन् मेरी सेवा स्वीकार करें। मेरे पास 1लाख स्वर्ण मुद्रायें हैं वह सब आपके काम आयें। बुद्ध कुछ न बोले चुपचाप चले गये। कुछ दिन पश्चात् वह पुनः तथागत की सेवा में उपस्थित हुआ और कहने लगा—देव! यह आभूषण और वस्त्र लें दुःखियों के काम आयेंगे मेरे पास अभी बहुत-सा द्रव्य शेष है। बुद्ध बिना कुछ कहे वहाँ से उठ गये। शौरपुच्छ को बड़ा दुःख था कि वह गुरुदेव को किस तरह प्रसन्न करे।

वैशाली में उस दिन महान् धर्म सम्मेलन था। हज़ारों व्यक्ति आये थे। बड़ी व्यवस्था जुटानी थी। सैकड़ों शिष्य और भिक्षु काम में लगे थे। आज शौरपुच्छ ने किसी से कुछ न पूछा और काम में जुट गया, रात बीत गई सब लोग चले गये परन्तु शौरपुच्छ बेसुध

कार्य निमग्न रहा। बुद्ध उसके पास पहुँचे और बोले शौरपुच्छ! तुमने प्रसाद पाया या नहीं? शौरपुच्छ का गला रुंध गया। भावविभोर होकर उसने तथागत को साष्टांग प्रणाम किया। बुद्ध ने कहा—वत्स परमात्मा किसी से धन और सम्पत्ति नहीं चाहता वह तो निष्ठा का भूखा है। लोगों की निष्ठाओं में ही रमण किया करता है। आज तुमने स्वयं यह जान लिया।

8. छल कपट देर तक टिकता नहीं

बुद्ध आस्वान राज्य के किसी नगर से गुजर रहे थे। यह स्थान उनके विरोधियों का गढ़ था। जब विरोधियों को बुद्ध के नगर में होने का पता चला तो उन्होंने एक चाल चली। एक कुलटा स्त्री के पेट में बहुत-सा कपड़ा बाँधकर भेजा गया। वह स्त्री जहाँ बुद्ध थे वहाँ पहुँची और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी—''देखो, यह पाप इसी महात्मा का है। यहाँ ढोंग रचाये घूमता है और अब मुझे स्वीकार भी नहीं करता।'' सभा में खलबली मच गई। उनके शिष्य आनन्द बहुत चिन्तित हो उठे और पूछा—भगवन्! अब क्या होगा?''

बुद्ध हँसे और बोले—''तुम चिन्ता मत करो कपट देर तक नहीं चलता। चिरस्थायी फलने-फूलने की शक्ति केवल सत्य में ही है।'' इसी बीच उस स्त्री की करधनी खिसक गई और सारे कपड़े जमीन पर खिसक पड़े। पोल खुल गई। स्त्री अपने कृत्य पर बहुत लज्जित हुई। लोग उसे मारने दौड़े परन्तु बुद्ध ने यह कहकर सुरक्षित लौटा दिया—जिनकी आत्मा मर गई हो, वह मरों से अधिक है, उन्हें शारीरिक दण्ड देने से क्या लाभ?''

9. सर्वस्व दान

आम्रपाली अपने समय की विख्यात सुन्दरी थी। उसके रूप लावण्य पर अनेकों मुग्ध रहते थे। उसका नृत्य गायन स्वर्ग की अप्सराओं जैसा था। एक बार वह महात्मा बुद्ध के उपदेश सुनने

गई । जीवन की गरिमा और उसके सदुपयोग की आवश्यकता पर उसने बहुत कुछ सुना । आत्मचिन्तन किया । अपनी गतिविधियों के लिए मन ने धिक्कारा । वह शेष जीवन को सुधारने का विश्वास करके लौटी ।

महात्मा बुद्ध की शरण में वह दोबारा गई । उनसे सान्त्वना ली और कहा—कि जो बीत चुका सो लौटने वाला नहीं । अब जो शेष रहा है उसी को सुधारना चाहिए । निर्णय यह हुआ कि उसे बौद्ध समुदाय में शिष्य होकर साधना करनी चाहिए और धर्म प्रचार में लग कर अनेकों को कल्याणकारक मार्गदर्शन कराना चाहिए । बात समझदारी की थी सो आम्रपाली ने अपना ली और भिक्षु समुदाय में सम्मिलित हो गई ।

अब दूसरा प्रश्न उभरा कि पिछले दिनों जो पाप कमाया है वह तो कुसंस्कार बना ही रहेगा । साधना को सफल न होने देगा । इसलिए पूर्व अनाचारों का प्रायश्चित भी आवश्यक है । प्रायश्चित का एक ही उपाय है जो गड्ढा खोदा गया है उसे भरा जाये । अनाचार का समापन पुण्य परमार्थ द्वारा किया जाये ।

आम्रपाली ने नर्तकी जीवन में प्रचुर सम्पदा कमाई थी । उसे धर्म प्रचार जैसे पुण्य कार्य में लगाया जाना आवश्यक था । उसने अपना समूचा संचय बौद्ध विहार के धर्म प्रचार के लिए दान कर दिया । स्वयं साधनारत होकर परिमार्जित हुई और धर्म प्रचार के परमार्थ हेतु देश विदेश में आजीवन प्रयत्न करती रहीं । नर्तकी आम्रपाली परम साध्वी बन गई ।

10. समर्पण की महत्ता

बुद्ध से मिलने एक घुमक्कड़ साधु आया । बुद्ध से आकर कहा "भगवन् मेरे पास न बुद्धि है, न चातुर्य, न शब्द हैं, न कुशलता । अतः मैं कोई प्रश्न अथवा जिज्ञासा कर सकने की स्थिति

में भी नहीं हूँ। यदि मुझे पात्र समझें तो मेरे योग्य जो कुछ भी कह सके कह दें।'' घड़ी भर के लिए बुद्ध मौन हो गये। सन्त भी शान्त बैठा रहा। कौतूहलवश सभी भिक्षु उन्हें निहारते रहे। अचानक देखा कि साधु की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उसने बुद्ध को साष्टांग प्रणाम किया और धन्यवाद देते हुए बोला–''बड़ी कृपा की भगवन्। आज मैं धन्य हो गया।'' और नाचता-गाता, गुन-गुनाता चला गया। हतप्रभ शिक्षा मण्डली देखती रही। बुद्ध एक शब्द भी नहीं बोले फिर आखिर क्या घट गया उस साधु के जीवन में?

आनन्द ने बुद्ध के पास जाकर पूछा भगवन् कुछ समझ में नहीं आया। न कोई वार्तालाप ही हुआ न कोई प्रश्नोत्तर। फिर क्या घट गया आप दोनों के बीच कि साधु परम सन्तुष्ट होकर लौट गया। हम वर्षों से आप के पास हैं, फिर भी वैसा कुछ घटित नहीं होता।

11. तुम कब ठहरोगे?

आज से लगभग 2500 वर्ष पहले श्रावस्ती में राजा प्रसेनजित् का राज्य था। राज्य में अंगुलिमान नामक एक भयानक खूंखार डाकू था। मार-काट में उसे मजा आता। उसमें दया का नामों निशान भी नहीं था। वह जिसे भी लूटता, उसकी दो अंगुलियाँ काट लेता था और इन्हीं कटी अंगुलियों की माला गले में डाले हुए था, इस घिनौनी वीभत्स माला के कारण वह अंगुलिमाल भी कहलाता था। महात्मा बुद्ध श्रावस्ती में पिण्डचार कर उसी रास्ते से चले, जहाँ डाकू अंगुलिमाल रहता था। ग्वालों, किसानों, राहगीरों ने महात्मा बुद्ध से कहा–

''हे भन्ते, इस रास्ते मत जाइए। इधर डाकू अंगुलिमाल रहता है, वह मनुष्यों को मार-मार कर उनकी अंगुलियों की माला

पहनता है ।'' महात्मा बुद्ध ग्वालों आदि द्वारा रोकने के बावजूद रुके नहीं, चलते ही गए ।

दूर से अंगुलिमाल ने इस बौद्ध भिक्षु को देखा । उसे अचंभा हुआ, यह श्रमण अकेला ही बढ़ा जा रहा है, जब कि सैकड़ों व्यक्ति मिलकर चलने पर भी घबराते हैं । ढाल-तलवार, तीर-धनुष लेकर वह बौद्ध संन्यासी की ओर दौड़ पड़ा । वह मामूली चाल से चलने वाले श्रमण को नहीं पकड़ सका । वह खड़ा होकर चिल्लाया, ''हे भिक्षुक, ठहरो ।'' महात्मा बुद्ध बोले, ''मैं तो खड़ा हूँ, ठहरा हूँ, स्थित हूँ—अंगुलिमाल, बतला तू कब ठहरेगा?'' डाकू बोला, चलते हुए तू कहता है, मैं ठहरा हूँ, स्थित हूँ और मुझे ठहरे हुए को कहते हो—ठहरो, भला यह तो बता कि कैसे तू स्थित-ठहरा है, मैं चलायामान और अस्थित हूँ?''

हे अंगुलिमान, प्राणियों के प्रति दंड त्यागने से मैं सर्वदा ठहरा हूँ, स्थित हूँ और तू प्राणियों पर निरन्तर अत्याचार करने से प्राणियों में असंयमी है, इसलिए, तू ठहरा नहीं है, इसलिए तू अस्थित है । महात्मा बुद्ध के सौम्य, कान्तिमान् चेहरे और उनकी हिम्मत को देखकर अंगुलिमाल को अपनी भीषण हिंसा, अत्याचारों की याद आई । महात्मा की चुनौती और हिम्मत का उस पर ऐसा असर पड़ा, उसने अपनी तलवार, हथियार जल-प्रपात और नाले में फेंक दिये । महात्मा के चरणों में गिरकर भिक्षु बन गया । भिक्षा-पात्र-चीवर लेकर भिक्षु अंगुलिमाल श्रीवस्ती में भिक्षा के लिए निकला । लोगों को उस पर भरोसा नहीं हुआ । वे समझने लगे कि डाका डालने की कोई नई चाल चल रहा है । नगरवासियों ने लाठियों से उसका शरीर छलनी कर दिया । वह बहते खून, फटे सिर, टूटे पात्र, फटे चीवर के साथ महात्मा बुद्ध के पास पहुँचा । उन्होंने दूर से ही कहा, हे भिक्षुक, यह अच्छा हुआ जिस कर्मफल के लिए तुम्हें अनेक जन्मों में नरक की

आग में झुलसना पड़ता, उसे तुमने इसी जन्म में भोग लिया ।

अंगुलिमाल ने ध्यान में बैठकर चिंतन किया, तब उसने अपूर्व शांति की अनुभति की । वह एक दंड से अपने सिर पर प्रहार कर बोला, ''आपने दंड-शस्त्र के बिना मुझे संयम का पाठ पढ़ाया, महाराज, मेरी बुद्धि मुझे सदा बुराई की ओर ले गई । उसे भी शिक्षा मिलनी चाहिए । पहले मैं हिसंक था, आज अहिंसक हो गया हूँ । महाराज, मुझे शरण दीजिए ।'' महात्मा बुद्ध ने अपने हाथों से उसकी सेवा-सुश्रूषा की । समय पाकर वह स्वस्थ हो गया और एक आदर्श भिक्षुक बन गया ।

12. ऐसा करने से आपका आशियाना बन सकता है मन्दिर

एक बार की बात है कि मगध के व्यापारी को व्यापारी को व्यापार में बहुत लाभ हुआ । इसके पश्चात् से वह अपने अधीनस्थों से अहंकारपूर्ण व्यवहार करने लगा । व्यापारी का अहंकार इतना प्रबल था कि उनको देखते हुए उसके परिजन भी अहंकार के वशीभूत हो गए । जब सभी के अहंकार आपस में टकराने लगे तो घर का वातावरण नरक की तरह हो गया ।

दुःखी होकर एक दिन वह व्यापारी महात्मा बुद्ध के पास पहुँचा और बोला, 'भगवन् ! मुझे इस नरक से मुक्ति दिलाइए । मैं भी भिक्षु बनना चाहता हूँ । महात्मा बुद्ध गम्भीर स्वर में बोले, अभी तुम्हारे भिक्षु बनने का समय नहीं आया है ।' उन्होंने कहा कि भिक्षु को पलायनवादी नहीं होना चाहिए । जैसे व्यवहार की अपेक्षा तुम दूसरों से करते हो स्वयं भी दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो । ऐसा करने से तुम्हारा घर ही मन्दिर बन जाएगा । उस व्यापारी ने महात्मा बुद्ध की सीख को अपनाया और घर का वातावरण स्वतः बदल गया । आप दूसरों के साथ वह व्यवहार न करो जो तुम्हें अपने लिए पसंद नहीं ।

13. मारने वाले से जीवन देने वाले की महत्ता अधिक

2500 वर्ष पूर्व धर्म के नाम पर फैली हिंसा के विरुद्ध करुणा की अलख जगाने वाले, कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ को न तो राजवैभव बांध सका और न सुंदर पत्नी यशोधरा और न पुत्र राहुल का आकर्षण ही बांध सका। वह ज्ञान की खोज में निकल गए और वर्षों तक कंदमूल खा, तपस्या से सच्चे बोध की प्राप्ति में संलग्न हुए। वही आगे महात्मा बुद्ध नाम से जाने गए। उन्होंने चार आर्य सत्यों और अष्ट सम्यक् मार्ग की प्रतिष्ठा की। उनके ही किशोर जीवन की एक सच्ची झाँकी से उनकी करुणा स्वतः बोल उठती है।

आकाश में हँसों की एक पंक्ति स्वच्छंदतापूर्वक नीले आकाश में अठखेलियाँ कर रही थीं कि एकाएक आर्त्त स्वर से चीखता एक घायल हंस कपिलवस्तु के राजप्रसाद के बाग़ में टहलते हुए कुमार सिद्धार्थ के चरणों में जा गिरा। हंस जीवन-मृत्यु की लीला में फंसा था। हंस के शरीर से खून बह रहा था। उन्होंने उस घायल हंस को संभाला, उसके शरीर से वह घातक तीर निकाला और उसे गोद में ले लिया। उसके घाव धोए, उसका थोड़ा उपचार किया और गोद में प्यार से सहलाने लगे। उसी समय उनका भाई देवदत्त वहाँ आ गया। उसके हाथ में अब भी घातक धनुष-बाण थे। आते ही वह चिल्लाया, ''सिद्धार्थ यह हंस मेरा है, मुझे दे दो!''

सिद्धार्थ ने कहा, ''यह तो आकाश से गिरा है, घायल है, मैंने इसे बचाया है, इसका घाव धोया है, इसे पानी पिलाया है।'' देवदत्त ने क्रोध में आकर कहा, ''यह देखो, मेरा बाण वह पड़ा है, उसी से घायल हुआ यह शिकार मेरा है।''

दोनों अपनी-अपनी बात पर डटे रहे। अंत में विवाद के निर्णय के लिए राजा के पास गए। राजा ने दोनों की बात ध्यान से

सुनी। फिर वह बोले, देवदत्त, बतलाओ तुम हंस को मार सकते हो?'' देवदत्त ने कहा, ''मुझे दीजिए, मैं अभी उसे मार देता हूँ।'' राजा ने कहा, ''क्या तुम उसे फिर जीवित कर दोगे?'' देवदत्त ने कहा, ''कहीं मरा प्राणी फिर जीवित हो सकता है।''

उस पर राजा ने कहा, ''शिकार का यह नियम ठीक है—जो जिस पशु-पक्षी को मारे उस पर उसका अधिकार है, लेकिन जो मरते प्राणी को जीवन दान दे, उस पर उसका ज्यादा अधिकार है, उससे जिसने उसे मारा है। वस्तुतः मारने वाले से जीवनदान देने वाले की महत्ता अधिक है। सिद्धार्थ ने मरते हंस को बचाया है, इसलिए उस पर कुमार सिद्धार्थ का अधिकार है।''

14. जब महात्मा बुद्ध ने बताया, कौन है सबसे सुखी

एक बार महात्मा बुद्ध पाटलिपुत्र में प्रवचन कर रहे थे। लोग मंत्रमुग्ध थे। प्रवचन से पहले बुद्ध ध्यानावस्था में बैठे हुए थे। तभी स्वामी आनंद ने जिज्ञासापूर्वक पूछा, ''आपके सामने बैठे लोगों में सबसे अधिक सुखी कौन है?''

महात्मा बुद्ध बोले—''सबसे पीछे जो सीधा-सादा सा फटेहाल ग्रामीण आँखें बंद किए बैठा है, वह सबसे अधिक सुखी है। यह सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ है।'' बुद्ध ने कहा, ''चलो मेरे पीछे-पीछे। मैं तुम्हें इसका प्रमाण देता हूँ।'' बुद्ध सबके पास पहुँचे। सभी से पूछा, ''तुम्हें क्या चाहिए?'' किसी ने कहा, मुझे पुत्र चाहिए। तो किसी ने कहा मुझे धन चाहिए। किसी ने यहाँ तक कहा कि मुझे शान्ति चाहिए।

तब उन्होंने सबसे पीछे बैठे हुए व्यक्ति से पूछा, ''तुम्हें क्या चाहिए।'' तब उसने बुद्ध से कहा, ''मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप अपना आशीर्वाद दीजिए ताकि जो भी मेरे पास है, उसी में संतोषपूर्वक रह सकूं।'' आनंद को उत्तर मिल चुका था और सभी

महात्मा बुद्ध की जयकार कर रहे थे ।

15. सब्र का फल

बात उस समय की है जब महात्मा बुद्ध विश्व भर में भ्रमण करते हुए बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे थे और लोगों को ज्ञान दे रहे थे । एक बार महात्मा बुद्ध अपने कुछ शिष्यों के साथ एक गांव में भ्रमण कर रहे थे । उन दिनों कोई वाहन नहीं हुआ करते थे । लोग पैदल ही मीलों की यात्रा करते थे । ऐसे ही गांव में घूमते हुए काफी देर हो गई थी । महात्मा बुद्ध को काफी प्यास लगी थी । उन्होंने अपने एक शिष्य को गांव से पानी लाने की आज्ञा दी । जब वह शिष्य गांव के अन्दर गया तो उसने देखा कि वहाँ एक नदी थी जहाँ बहुत सारे लोग कपड़े धो रहे थे, कुछ लोग नहा रहे थे तो नदी का पानी काफी गंदा दिख रहा था ।

शिष्य को लगा कि गुरु जी के लिए ऐसा गंदा पानी ले जाना ठीक नहीं होगा, यह सोचकर वह वापस आ गया इसीलिए उन्होंने फिर से दूसरे शिष्य को पानी लाने भेजा । कुछ देर पश्चात् वह शिष्य लौटा और पानी ले आया । महात्मा बुद्ध ने शिष्य से पूछा कि नदी का पानी तो गंदा था फिर तुम साफ पानी कैसे ले आए । शिष्य बोला कि गुरुजी वहाँ नदी का पानी वास्तव में गंदा था लेकिन लोगों के जाने के बाद मैंने कुछ देर इंतजार किया और कुछ देर बाद मिट्टी नीचे बैठ गई तथा साफ पानी ऊपर आ गया ।

बुद्ध यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और शेष शिष्यों को भी सीख दी । हमारा यह जो जीवन है यह पानी की तरह है । जब तक हमारे कर्म अच्छे हैं तब तक सब कुछ शुद्ध है लेकिन जीवन में कई बार समस्या और दुःख भी आते हैं जिनसे जीवन रूपी पानी गंदा लगने लगता है । कुछ लोग पहले वाले शिष्य की तरह बुराई को देखकर घबरा जाते हैं और विपत्ति देखकर वापस लौट जाते हैं, वे

जीवन में कभी आगे नहीं बढ़ पाते । वहीं दूसरी ओर कुछ लोग जो धैर्यशील होते हैं वे व्याकुल नहीं होते और कुछ समय के पश्चात् गंदगी रूपी समस्याएं तथा दुःख स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं ।

16. बुद्ध का अन्तिम उपदेश

बुद्ध का अन्तिम दिन था । आनन्द छाती पीटकर रोने लगा और बोला ''आप तो जा रहे हैं मेरा क्या होगा?'' बुद्ध ने कहा—''आनन्द ! पागल मत बनो । मुझ से पहले कितने ही बुद्ध हो गये और मेरे बाद अनेकों होंगे । यह सिलसिला कभी समाप्त नहीं होगा । यदि तू सीखने में कुशल है तो किसी से भी सीख लेना । तू 40 वर्ष तक मेरे साथ रहा तू कहता है कि मुझे ज्ञान नहीं हुआ । ''मैं जा रहा हूँ, उस दिन कह रहा है कि अब क्या होगा? यदि 40 वर्ष में तुझे ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, तो 40 जन्मों में भी तेरी क्या समझ आवेगा? हो सकता है मेरे होने के कारण तेरी सीखने की क्षमता क्षीण हो गई हो । तू समझता था कि गुरु मिल गये, सब कुछ मिल गया । मिलना ही पर्याप्त नहीं, तुझे भी बदलने की जरूरत थी, बनने की जरूरत थी । संभव है मेरे न रहने पर तू बुद्धत्व को प्राप्त हो'' और इतना कहकर बुद्ध ने अन्तिम सांस ली । ऐसा हुआ । कहते हैं कि आनन्द को बुद्ध के जाने के बाद ही परम ज्ञान उपलब्ध हो सका ।

3. आचार्य चाणक्य

1. रूप बड़ा या गुण

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने एक दिन अपने प्रधान मंत्री चाणक्य से कहा, ''कितना अच्छा होता कि आप अगर रूपवान भी होते ।'' चाणक्य ने उत्तर दिया, ''महाराज रूप तो मृगतृष्णा है । आदमी की

पहचान तो गुण और बुद्धि से ही होती है, रूप से नहीं ।'' क्या कोई ऐसा उदाहरण है जहाँ गुण के सामने रूप फीका दिखे, चन्द्रगुप्त ने पूछा ।''

''ऐसे तो कई उदाहरण है महाराज, चाणक्य ने कहा, ''पहले आप पानी पीकर मन को हल्का करें बाद में बात करेंगे ।'' फिर उन्होंने दो पानी के गिलास बारी-बारी से राजा की ओर बढ़ा दिये ।'' महाराज पहले गिलास का पानी इस सोने के घड़े का था और दूसरे गिलास का पानी काली मिट्टी की उस मटकी का था । अब आप बताएं कि किस गिलास का पानी आपको मीठा और स्वादिष्ट लगा ।'' सम्राट् ने उत्तर दिया, ''मटकी से भरे गिलास का पानी शीतल और स्वादिष्ट लगा एवं उससे तृप्ति भी मिली ।''

वहाँ उपस्थित महारानी ने मुस्कुराकर कहा, ''महाराज हमारे प्रधानमंत्री ने बुद्धि चातुर्य से उत्तर दे दिया । भला यह सोने का खूबसूरत घड़ा किस काम का जिसका पानी बेस्वाद लगता है । दूसरी और काली मिट्टी से बनी यह मटकी, जो कुरुप तो लगती है लेकिन उसमें गुण छिपे हैं । उसका शीतल सुस्वादु पानी पीकर मन तृप्त हो जाता है । अब आप ही बतला दें कि रूप बड़ा है अथवा गुण एवं बुद्धि ?''

2. दूसरा दीपक

एक बार की बात है मगध सम्राट् के सेनापति किसी व्यक्तिगत काम से चाणक्य से मिलने पाटलीपुत्र पहुँचे । शाम ढल चुकी थी, चाणक्य गंगा तट पर अपनी कुटिया में दीपक के प्रकाश में कुछ लिख रहे थे । कुछ देर पश्चात् जब सेनापति भीतर दाखिल हुए उनके प्रवेश करते ही चाणक्य ने सेवक को आवाज़ लगाई और कहा, ''आप कृपया इस दीपक को ले जाइए और दूसरा दीपक जला कर रख दीजिए । सेवक ने आज्ञा का पालन करते हुए ठीक वैसा ही किया ।

जब चर्चा समाप्त हो गई तब सेनापति ने उत्सुकतावश प्रश्न किया, ''हे महाराज, मुझे एक बात समझ नहीं आई। मेरे आगमन पर आपने एक दीपक बुझवाकर रखवा दिया और ठीक वैसा ही दूसरा दीपक जलाकर रखने का आदेश दिया, जब दोनों में कोई अन्तर न था तो ऐसा करने का क्या आवश्यकता थी?

इस पर चाणक्य ने मुस्कुराते हुए सेनापति से कहा, ''भाई पहले जब आप आए तब मैं राज्य का काम कर रहा था, उसमें राजकोष का खरीदा गया तेल था, परन्तु जब मैंने आपसे बात की तो अपना दीपक जलाया क्योंकि आपके साथ हुई बातचीत व्यक्तिगत थी, मुझे राज्य के धन को व्यक्तिगत कार्य में खर्च करने का कोई अधिकार नहीं इसलिए ऐसा मैंने किया।'' उन्होंने कहना जारी रखा, ''स्वदेश से प्रेम का अर्थ है अपने देश की वस्तु को अपनी वस्तु समझ कर उसकी रक्षा करना। ऐसा कोई काम मत करो जिससे देश की महानता को आघात पहुँचे। प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति और आदर्श होते हैं, उन आदर्शों के अनुरूप काम करने से ही देश के स्वाभिमान की रक्षा होती है।''

3. जीत के लिए जरूरी है सही नीति

जीवन में सफलता के लिए केवल कड़ी मेहनत ही आवश्यक नहीं होती बल्कि मनुष्य को देश, काल व परिस्थिति के अनुसार विवाद, विरोध, प्रलोभन और युद्ध जैसी स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिये। महान् कूटनीतिज्ञ आचार्य चाणक्य ने सफलता के लिए कूटनीति के 4 मुख्य अस्त्र बतलाए हैं जिनका उपयोग समय और परिस्थितियों को ध्यान में रख कर करना चाहिये। यदि इन चारों को साध लिया गया तो फिर मनुष्य की जीत सुनिश्चित है।

ये 4 अस्त्र हैं साम, दाम, दंड और भेद। जब मित्रता दिखाने (साम) की आवश्यकता हो तो आकर्षक उपहार, आतिथ्य, समरसता

और संबंध बढ़ाने के प्रयास करने चाहियें। इससे दूसरे पक्ष में विश्वास पैदा होता है। यदि साम से काम न हो तो दाम यानी प्रलोभन का रास्ता अपनाया जा सकता है। यदि कूटनीति का यह अस्त्र भी विफल हो तो दंड का इस्तेमाल उचित है। इसमें ताकत का इस्तेमाल त्याज्य नहीं है। इसी तरह समय की जरूरत होने पर भेद को भी अपनाना चाहिये। इसमें दुश्मन की सेना, गुट या मंडल व अधिकारियों में फूट डालना, उसके करीबी रिश्तेदारों और उच्च पदों पर स्थित लोगों से उसकी ताकत के राज जानना आदि शामिल हैं। जीत के लिए ये अस्त्र अवश्यमेव हैं।

4. मेरी बुद्धि कभी साथ न छोड़े

इतिहास का एक बड़ा प्रेरक प्रसंग है। मौर्य साम्राज्य के निर्माता और भारत के सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री आचार्य चाणक्य को एक बार जीवन में कठिन प्रसंग-मौके का सामना करना पड़ा। ऐसा लगता था कि मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में पूर्ण अव्यवस्था छा गई है। राष्ट्र के एक क्रांतिकारी को फांसी का दंड देने ले जाया जा रहा था कि एक जासूस सिद्धार्थ उसे वधभूमि से लेकर भाग गया। जब प्रधान अमात्य को यह सूचना मिली तो उन्होंने मन-ही-मन अपने दूत को शाबाशी दी। उसने अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

उस समय प्रकट रूप से प्रधानमंत्री चाणक्य ने राज्याधिकारी भागुरायण को आदेश दिया कि वह शीघ्र ही अभियुक्त को पकड़कर लाए, परन्तु तभी उसे संवाद दिया गया—भागुरायण भाग गया। उसी समय पटना के राजदुर्ग में बड़ा कौतुहल होने लगा। समाचार मिला कि राजधानी की राज्यव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई है। शताब्दियों पुराने प्रसिद्ध नाटक ''मुद्राराक्षस'' में विशाखदत्त ने उस

अवसर पर प्रधानमंत्री आचार्य चाणक्य की एक उक्ति का विवरण निम्नलिखित शब्दों में दिया–

भागुरायण आदि किसी योजना के अधीन शत्रु मलयकेतु के पक्ष में चले गये हैं, जो पीछे रह गए हैं, वे भी चाहें तो छोड़कर चले जाएं। मुझे उन सबकी चिंता नहीं, मेरी अब एक आकांक्षा है कि सौ सेनाओं से शक्तिशाली सम्पूर्ण नंद वंश के उन्मूलन में यशस्विनी मेरी बुद्धि मेरा कभी साथ न छोड़े।

4. आदिशंकराचार्य

1. आदिशंकराचार्य और चाण्डाल

एक दिन जब वे गंगातट की ओर जा रहे थे उनको सामने से एक चांडाल आता दिखाई दिया जिसके साथ चार बड़े कुत्ते थे और जो मद्य के नशे में झूमता-झामता चला आ रहा था। उससे स्पर्श हो जाने की आशंका से श्री शंकर ने कहा–

रास्ते के एक तरफ होकर चलो और मेरे जाने के लिए स्थान छोड़ दो।

चाण्डाल ने उनकी बातों की तरफ कुछ ध्यान न दिया और चलते-चलते कहने लगा–

कौन किसको स्पर्श करता है? सर्वत्र एक ही वस्तु है उसके सिवाय और क्या? किसके स्पर्श से भयभीत होकर तुम दब कर चल रहे हो? आत्मा तो किसी को स्पर्श नहीं करती। जो आत्मा तुम में है वह मेरे भीतर भी है। फिर तुम किसको दूर जाने की कह रहे हो? मेरी देह को या मेरी आत्मा को?

इन शब्दों के सुनकर शंकर का ब्रह्मज्ञान सच्चे व्यावहारिक

स्तर पर पहुँच गया और उन्होंने मन ही मन में उस चाण्डाल को गुरु समझ कर प्रणाम किया ।

2. आदि शंकराचार्य और मूर्ति

अब वे बद्रीनाथ धाम पहुँचे तो वहाँ के निवासियों ने वहाँ के मन्दिर की दुर्दशा का वर्णन किया । वे उसकी पुनप्रतिष्ठा करने के लिए मन्दिर पर पहुँचे । पूजा आरम्भ करवाना चाहते थे, परन्तु मूर्ति के अभाव में कुछ भी नहीं कर पा रहे थे । वहाँ के मन्दिर के पुजारी तथा सम्बन्धित विद्वज्जन नयी मूर्ति बनवाने का विचार कर रहे थे ।

इस पर उन्होंने पूछा–''पहले की मूर्ति कहाँ है ?''

''उसे तो बौद्धों ने नारद कुण्ड में फेंक दिया है ।''

''तो उसे ही क्यों न निकाला जाये ?''

स्वामी जी के इस कथन पर सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे । एकत्रित शताधिक मनुष्यों के चेहरे पर 'यह असंभव है' का भाव तैर आया । स्वामी शंकराचार्य ने पूछा–''कोई देवमूर्ति को निकालने के लिए तैयार है ।''

इतने गहरे कुण्ड से मूर्ति निकालने का प्रयास करना प्राणों से खेलना था । अतः कोई तैयार नहीं हुआ । सबको इस प्रकार पस्त देख वे स्वयं अपना उत्तरीय फेंककर कुण्ड में जा कूदे । लोगों के मुँह से दीर्घ निःश्वास निकल गया । यह संन्यासी या तो अपने प्राण गंवायेगा या अपने वचन ।

काफी समय के पश्चात् वे खाली हाथ बाहर निकले । कुछ देर साँस लेने के बार फिर कूदे । लोगों ने मना किया परन्तु वे माने नहीं । दूसरी बार भी वे खाली हाथ बाहर आये । तीसरे व अन्तिम प्रयास में जब वे ऊपर आये तो मूर्ति उनके हाथ में थी ।

5. कबीर दास

1. दृष्टिकोण की भिन्नता

कबीर सिद्ध पुरुष की तरह विख्यात हो गये। दूर-दूर से जिज्ञासु लोग आते। तब भी वे पहले की तरह ही कपड़ा बुनते रहते और साथ-साथ सत्संग चलाते। एक दिन शिष्यों में से एक ने पूछा– ''आप जब साधारण थे तब कपड़ा बुनना ठीक था, परन्तु अब जब कि सिद्ध पुरुष हो गये और निर्वाह करने के लिए धन की कमी नहीं रहती तो आप कपड़ा क्यों बुनते हैं।''

कबीर ने सरल भाव से कहा–''पहले मैं पेट पालने के लिए बुनता था परन्तु अब मैं जन-समाज में समाये हुए भगवान् का तन ढकने और अपना मनोयोग साधने के लिए बुनता हूँ।''

कार्य वही रहने पर भी दृष्टिकोण की भिन्नता से उत्पन्न होने वाले अन्तर को समझने से शिष्य का समाधान हो गया।

2. विश्वास की प्रगाढता-दाम्पत्य जीवन की आधारशिला

कबीर अपने दरवाजे पर बैठे ग्रामवासियों को उपदेश दे रहे थे। तभी एक युवक ने पूछा–महाराज! यह तो बताइये कि विवाह करना ठीक होता है या नहीं? कबीर एक क्षण चुप रहे फिर अपनी पत्नी को आवाज़ देकर बुलाया और कहा–देख! यहाँ बड़ा अन्धकार फैला है दीपक तो जला कर ले आ। धर्म-पत्नी घर गई और दीपक जला कर ले आई। युवक हँस कर बोला–महाराज! आप तो विलक्षण है हीं आपकी पत्नी भी खूब है। आप दिन को रात बताते हैं तो पत्नी ने दीपक लाकर आपकी बात का समर्थन भी कर दिया। क्या खूब नाटक रहा। कबीर हँसकर बोले–नाटक नहीं, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर। यदि युवक-युवती एक दूसरे पर इतना प्रगाढ़ विश्वास रख सकें तो ही उन्हें विवाह करना चाहिये।

3. संन्यासी बनूँ या गृहस्थ

एक जिज्ञासु कबीर के पास पहुँचा, बोला—'दो बातें सामने हैं—संन्यासी बनूँ या गृहस्थ ।'

कबीर ने कहा—'जो भी बनो आदर्श बनो ।'

उदाहरण समझाने के लिए उन्होंने दो घटनाएँ प्रस्तुत कीं । अपनी पत्नी को बुलाया । दोपहर का प्रकाश तो था, परन्तु उन्होंने दीपक जला लाने को कहा ताकि वे कपड़ा अच्छी तरह बुन सकें । पत्नी दीपक जला लाई और बिना कुछ बहस किये रखकर चली गई । कबीर ने कहा—'गृहस्थ बनना हो तो परस्पर ऐसे विश्वासी बनना, कि दूसरे की इच्छा ही अपनी इच्छा बने ।

दूसरा उदाहरण सन्त का देना था । वे जिज्ञासु को लेकर एक टीले पर गये, वहाँ वयोवृद्ध महात्मा रहते थे । वे कबीर को जानते न थे । नमाज के उपरान्त उनसे पूछा —'आपकी आयु कितनी है ।' बोले— '80 वर्ष ।'

इधर-उधर की बातों के बाद कबीर ने कहा—''बाबा जी, आयु क्यों नहीं बताते ?'' सन्त ने कहा था—'बेटे, अभी तो बताया था, क्यों नहीं बताते ?' सन्त ने कहा कि—'बेटे, अभी तो बताया था, 80 वर्ष ! तुम भूल गये हो । टीले से आधी चढ़ाई उतर लेने पर कबीर ने सन्त को जोर से पुकारा और नीचे आने के लिए कहा । वे हाँफते-हाँफते चले गये । कारण पूछा, तो फिर वही प्रश्न किया— 'आपकी आयु कितनी है ?' सन्त को तनिक भी क्रोध नहीं आया । वे उसे पूछने वाले की विस्मृति मात्र समझे और कहा—80 वर्ष है ।' हँसते हुए वापस लौट गये । कबीर ने जिज्ञासु से कहा—'सन्त बनना हो तो ऐसा बनना, जिसे क्रोध ही ने आये ।'

6. गुरु नानक देव

1. सज्जनता का बिखराव

गुरु नानक देव एक गांव में गये । वहाँ के निवासियों ने बड़ा आदर किया—चलते समय नानक जी ने आशीर्वाद दिया—'उजड़ जाओ ।' वे दूसरे गाँव में गये तो वहाँ के लोगों ने तिरस्कार किया, कटु वचन बोले और लड़ने-झगड़ने पर उतारू हो गये । नानक जी ने आशीर्वाद दिया—'आबाद रहो ।'

साथ में चल रहे शिष्यों ने पूछा—भगवन्! आपने आदर करने वालों को 'उजड़ जाओ' और तिरस्कार करने वालों को 'आबाद रहो' का उलटा आशीर्वाद क्यों दिया? इस पर नानक ने कहा—सज्जन लोग उजड़ेंगे तो वे बिखर कर जहाँ भी जायेंगे सज्जनता फैलावेंगे । इसलिए उनका उजड़ना ही ठीक है । परन्तु दुर्जन सर्वत्र अशान्ति उत्पन्न न करें इसलिए उनके एक ही स्थान पर रहने में भलाई है ।

2. सम्पत्ति का दर्प

लाहौर के प्रसिद्ध सेठ दुनीचन्द को अपनी सम्पत्ति के ऊपर बहुत नाज़ था । उन्होंने अपने मकान के ऊपर अनगिनत झण्डे लगा रखे थे, जो इस बात के प्रतीक थे कि जितने झण्डे हैं उतने करोड़ रुपया सेठ के खजाने में जमा है ।

एक दिन गुरु नानक वहाँ पहुँचे उनके धन का इस प्रकार का प्रदर्शन देख, एक सुई देते हुए उन्होंने कहा इसे अभी सुरक्षित रख लें और मृत्यु के पश्चात् मुझे वापस कर देना । गुरु की बात सुनकर दुनीचन्द को बहुत आश्चर्य हुआ । उसने मुस्कराते हुए पूछा—''गुरुजी मैं अपने मरने के पश्चात् यह सूई आपको कैसे लौटा

पाऊँगा। मरने के बाद तो किसी वस्तु को साथ नहीं ले जाया जा सकता।''

इस पर गुरु नानक देव मुस्करा उठे और करुणा भरे शब्दों में कहा—''यदि तुम अपने मरने पर एक छोटी-सी सुई भी नहीं ले जा सकते तो यह करोड़ों की सम्पत्ति तुम कैसे ले जा सकते हो?'' गुरु के इस वचन ने दुनीचन्द के हृदय को छू लिया और उसने गुरु नानक के उपदेशों का पालन करते हुए त्याग और सेवा का मार्ग अपनाने का संकल्प लिया।

3. संग्रह की सार्थकता

बगदाद के शासक ने जितना कर सकता था धन-सम्पत्ति जमा की। उसके लिये वह प्रजा पर तरह-तरह के अन्याय और अत्याचार भी करता था। उससे प्रजा बड़ी दुःखी थी। एक दिन गुरु नानक घूमते-घूमते बगदाद जा पहुँचे। खलीफा के महल के सामने ही वह कंकड़ों का ढेर जमा करके उन्हीं के पास बैठ गये। किसी ने खलीफा को नानक के आने की सूचना दी। खलीफा स्वयं वहाँ पहुँचा। कंकड़ों का ढेर देखते ही उसने पूछा— ''महाराज! आपने यह कंकड़ किस लिए इकट्ठे किये हैं।''

गुरु नानक ने मुस्करा कर उत्तर दिया—''खलीफा जी! इन्हें कयामत के दिन ईश्वर को उपहार में दूँगा।'' खलीफा जोर से हँसा और बोला—''अरे नानक! मैंने सुना था कि तू बड़ा ज्ञानी है परन्तु तुझे इतना भी पता नहीं कि कयामत के दिन रूहें अपने साथ कंकड़ तो क्या सुई भी नहीं ले जा सकतीं।''

गुरु नानक ने चुटकी ली—''मालूम नहीं महोदय, परन्तु मैं आया इसी उद्देश्य से हूँ कि और तो नहीं पर शायद आप प्रजा को लूटकर जो धन इकट्ठा कर रहे हैं, उसे अपने साथ ले जायेंगे तो उसके साथ ही यह कंकड़ भी चले जायेंगे?'' खलीफा समझ गया,

इसके आगे प्रजा का उत्पीड़न बन्द कर उनकी सेवा में जुट गया ।

4. नानक का उपदेश

नानक की बातों से काज़ी का दिमाग़ गड़बड़ा गया । वह कुछ देर तक सोचता रहा और फिर बोला—

अगर तुम कोई भेद नहीं मानते तो क्या मस्जिद में नमाज पढ़ सकते हो ?

क्यों नहीं ? नानक उठकर खड़े हो गए और बोले—चलो, हम आज आपके साथ मस्जिद में नमाज़ पढ़ेंगे ।

काज़ी नानक को लेकर नवाब के दरबार में आए । वहाँ से नवाब भी और अन्य मुसलमान कर्मचारी भी उन दोनों के साथ चल दिए । नगर में जिसने सुना वही मस्जिद की ओर चल दिया । लोगों ने हवा उड़ा दी कि नानक तो मुसलमान हो गया है । शहर के हिन्दू इस बात से चिन्तित हो उठे और बौखलाने लगे । जय राम भी परेशान हो उठे । लेकिन नानकी चिन्तारहित स्थिर बनी रही । उसने जय राम को समझाया कि उसका भाई काज़ी के साथ नमाज पढ़ने नहीं गया है, वह उसे सच्चा रास्ता दिखाने गया है । मस्जिद में मुसलमानों की भारी भीड़ जमा थी । वे तो खुश हो रहे थे कि उन्होंने एक हिन्दू को मुसलमान बना लिया है और वह अब मस्जिद में नमाज पड़ेगा । नमाज का वक्त हुआ । सभी मुसलमानों के साथ नानक भी पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गए । जैसे ही सभी मुसलमान सजदे में झुके, वे भी झुककर नीचे हुए और फिर पलथी मारकार वहीं बैठ गए और आँखे बंद कर लीं । नमाज के पश्चात् काजी और नवाब ने नानक को फर्श पर चुपचाप आँखें बंद किए बैठे देखा तो वे क्रोध में भर उठे । नवाब ने क्रोधित होकर कहा—

नानक ! तुमने नमाज न पढ़कर दीने इस्लाम का अपमान किया है । तुम्हें इसकी कड़ी सज़ा मिलेगी ।

नवाब साहब ! आप गुस्सा थूक दीजिए । दरअसल मैं नमाज तो तब पढ़ता, जब यहाँ कोई नमाजी होता ।

यह तुम क्या कह रहे हो ? काजी बौखलाया ।

मैं ठीक कह रहा हूँ काज़ी साहब ! यहाँ जो लोग नमाज पढ़ने का ढोंग कर रहे थे, वे नमाज नहीं, अपनी-अपनी समस्याओं को सुलझाने की अल्ला ताला से मांग कर रहे थे ।

ऐसा नहीं हो सकता । तुम झूठ बोल रहे हो । काजी आपे से बाहर होकर चीखने लगा । लेकिन नानक को क्रोध नहीं आया । वे शांत भाव से मुस्कराते रहे और बोले–

काज़ी साहब ! आप भी नमाज कहाँ पढ़ रहे थे ? आप तो अपनी नई ब्यायी घोड़ी और उसके बछड़े की सलामती की फिक्र कर रहे थे ।

नानक ने नवाब की ओर मुड़कर देखा और बोले–

नवाब साहब ! आप भी तो नमाज के जगह काबुल के घोड़ों की खरीदारी के बारे में सोच-समझकर परेशान हो रहे थे ।

नानक की बात सुनकर काजी और नवाब के चेहरों के रंग उड़ गए । वे उस वक्त सोच रहे थे कि नानक ने जो कहा, सच कहा था । उन्होंने नानक को एक पहुँचे हुए फकीर के रूप में देखा । उन्होंने तत्काल नीचे झुककर नानक के पैर पकड़ लिए । यह दृश्य देखकर वहाँ खड़े सभी मुसलमान हैरानी से उन्हें देखने लगे । नगर में यह समाचार तेजी से फैल गया और लोग नानक की जय-जयकार करने लगे ।

7. महर्षि दयानन्द

1. सच्ची दया

सच्चे शिव की खोज में युवक मूलशंकर 'ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य' बनकर ज्ञानार्जन के लिए किसी अच्छे गुरु से दीक्षा ग्रहण करने के लिए देशाटन कर रहे थे कि एक दिन उन्होंने देखा कि कुछ लोग गाजे-बाजे के साथ जा रहे थे। उनके पीछे रोती बिलखती सफेद वस्त्र पहने एक दुःखी औरत जा रही थी। ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य ठिठक गए। उस औरत को पुकारते हुए कहा, ''माँ, क्या बात है? क्या कष्ट है जो तुम ऐसे बिलख-बिलखकर रो रही हो?'' उस औरत ने कहा, ''मैं एक अभागी विधवा हूँ। ये लोग मेरे इकलौते लड़के को देवी की बलि बनाना चाहते हैं। मेरी किसी पुकार अनुनय-विनय का इन पर कोई असर नहीं हुआ।''

उस दुःखी माँ के साथ ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य मंदिर पहुँचे। वहाँ एक देवी की मूर्ति के सामने एक छोटे-से अबोध को जबर्दस्ती लिटाया हुआ था। बच्चा चीख-पुकार कर रहा था, परन्तु किसी पर कोई असर नहीं हो रहा था। मन्दिर के अन्दर पहुँचकर ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य ने उन सब को डांटा-ललकारा और कहा, ''इस बच्चे और विधवा नारी पर क्यों अत्याचार करते हो?'' वे ढोंगी बोले, ''हमें तो देवी को बलिदान देना है। यह बच्चा बचाना चाहते हो तो स्वयं की बलि दो।''

कहते हैं कि एक क्षण का संकोच किए बिना उस दयालु युवक ने बलिस्थान पर अपनी गर्दन रख दी। वे सब ढोंगी जन हर्ष से चिल्ला उठे। वे आगे कुछ करते, इससे पहले ही शोर सुनकर वहाँ कम्पनी के कुछ सिपाही आ गए। उन्होंने सारा दृश्य देखकर उन ढोंगियों को ललकारा। वे अपनी सारी पूजा-सामग्री और हथियार

छोड़कर भाग निकले । उस माँ ने उस ब्रह्मचारी के पैरों में सिर नवा दिया और उसकी दया के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट की । कहते हैं कि इसी घटना के पश्चात् स्वामी पूर्णानन्द जी ने ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य को दीक्षा देकर दयानन्द नाम दिया ।

2. संयम का जीवन

वीतराग स्वामी सर्वदानन्द महाराज आर्यसमाज के रागहीन तपस्वी विद्वान् संन्यासी थे । उन्होंने अपने संस्मरण सुनाते हुए एक बार कहा था, कि दिल्ली दरबार में जब मैं गया, तब ग्वालियर के एक मारवाड़ी ने मुझे स्वामी दयानन्द के जीवन की एक सत्य कथा सुनाई । उसने बतलाया कि स्वामी जी के उपदेशों की चर्चा सुनकर एक प्रतिष्ठित मुसलमान भी उनके पास गए । परन्तु उसका मुख सर्वदा उदास रहता था । एक दिन स्वामी जी ने कारण पूछा । उसने उत्तर दिया कि मेरे कई बच्चे हुए, परन्तु जीता कोई नहीं, इसलिये मन सदा उदास रहता है ।

स्वामी जी ने कहा, ''उपाय तो हम बतला देते हैं, परन्तु है कुछ कठिन । यदि तुम करो तो हम विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हारे घर पुत्र होगा और जीता रहेगा ।'' उसने स्वामी जी के चरण पकड़ लिए और कहा, ''महाराज, जो कुछ आप कहेंगे, उसे पूरा करूँगा ।'' इस पर स्वामी जी ने कहा, ''सबसे बड़ी शर्त एक वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य रखने की है । यदि यह स्वीकार हो तो अपनी स्त्री से पूछ कर आओ कि इसे वह भी स्वीकार करती है या नहीं ?''

दूसरे दिन वह आया और उसने स्वामी जी से कहा, 'हम दोनों को आपकी यह बात स्वीकार है ।'' स्वामी जी ने उन दोनों को गर्म वस्तुएं, मांस-मदिरा छोड़ देने के लिए कहा, साथ ही पूर्ण ब्रह्मचर्य रखने के लिए कहा ।

दोनों मुसलमान पति-पत्नी ने वर्ष भर तक मांस-मदिरा छोड़कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया, उसके पश्चात् गृहस्थ धर्म

का पालन किया तो उन्हें पुत्र हुआ और वह उस परिवार में दीर्घायु हुआ ।

3. गृहस्थ धर्म का निर्वाह

एक बार एक सम्पन्न गृहस्थ दुकानदार स्वामी दयानन्द के पास पहुँचा । उनकी सेवा में हाथ जोड़कर बोला, ''महाराज , मैं आपका एक पक्का भक्त हूँ । मैं चाहता हूँ कि मैं अपनी दुकान बेच दूँ और उससे मिले 10,000 रुपये आर्यसमाज को दान दे दूँ, जिससे आर्यसमाज का भव्य मन्दिर बन जाए ।''स्वामी जी ने जिज्ञासा प्रकट की, ''तुम्हारे घर-परिवार में कितने लोग हैं?'' दुकानदार ने उत्तर दिया, मैं हूँ, मेरी धर्मपत्नी और दो बच्चे भी हैं । परिवार में कमाने वाला मैं अकेला हूँ । यह दुकान ही मेरी और मेरे परिवार की आय का साधन है ।''

स्वामी जी ने उस भक्त दुकानदार को सचेत करते हुए कहा, ''भले मानस, यह बात तो ठीक नहीं । तुम अपनी घर-गृहस्थी का सहारा दुकान बेच देगो, तो तुम्हारा और तुम्हारे परिवार का कैसे काम चलेगा । तुम्हारा कर्तव्य है कि पहले तुम अपने परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार निभाओ । यदि तुम दान धर्म का निर्वाह करने के लिए गृहस्थी को दांव पर लगा दोगे तो गृहस्थ धर्म का निर्वाह कैसे हो सकेगा?''

स्वामी जी ने व्यापारी गृहस्थ को सचेत करते हुए कहा, ''तुम्हारी भावना का मैं सम्मान करता हूँ, परन्तु तुम्हारा 10000 रुपये देकर रोजगार खत्म कर देना ठीक नहीं, यदि तुम अपनी बचत के 1000 रुपये ही संस्था को दान दो तो वह तुम्हारे परिवार और समाज सबके लिए ठीक हो सकेगा । मेरी सलाह तुम्हें यही है कि तुम रोजगार से मिलने वाले शेष रुपयों से अपने उसी रोजगार को मजबूत करो या किसी नए काम-धंधे को अधिक मजबूत पुख्ता

करो। इसी में तुम्हारा और तुम्हारे गृहस्थ धर्म का पालन हो सकेगा।''

4. पूर्वजों की भाषा से अज्ञान

महर्षि दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए एवं ''सत्यार्थप्रकाश'' को समस्त भारतभूमि में विस्तीर्ण करते हुए बंगभूमि पहुँचे। वहाँ उनका परिचय और सान्निध्य ब्रह्मसमाज के प्रमुख नेता श्री केशवचन्द्र सेन से हुआ। श्री सेन अपने भारतीय चिन्तन का विदेशों में प्रचार-प्रसार करने के लिए इंग्लैंड जा रहे थे; सेन महोदय ने एक दिन महर्षि से कहा, ''मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि वेदों के अद्वितीय विद्वान् होकर भी आप अंग्रेज़ी नहीं जानते, अन्यथा यूरोप में वैदिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले विद्वान् का विदेश यात्रा में साथ हो जाता।''

महर्षि दयानन्द ने मुस्कराकर उत्तर दिया, ''महोदय, मुझे भी इस बात का दुःख है कि ब्रह्मसमाज का सर्वोच्च नेता अपने पूर्वजों की संस्कृत भाषा नहीं जानता। वह अपने देशवासियों को उस विदेशी भाषा में उपदेश देता है, जिसे वे जानते तक नहीं।''

5. ग़रीबों से समुचित व्यवहार : विदेशी शासन का अंत हो!

सन् 1870 ई० में प्रयाग के कुंभ के मेले में गंगातट पर बैठे महर्षि दयानन्द ने एक दिन देखा कि एक स्त्री मरे हुए बालक का निर्जीव शरीर तो पानी में प्रवाहित कर गई, परन्तु उसका कफ़न उतार कर उसे धोकर फिर वायु में सुखाती और रोती हुई अपने घर चली गई। इस दृश्य से महर्षि का हृदय भर उठा। उन्हें अनुभव हुआ—भारत देश इतना निर्धन है कि माता अपने कलेजे के टुकड़े को तो गंगा नदी में बहा चली है परन्तु उससे वस्त्र इसलिए बहाया नहीं गया कि उसका मिलना कठिन है। उस समय महाराज ने प्रण किया मैं इन्हीं लोगों की भाषा में प्रचार करके इनके दुःख दूर करने

के साधन इकट्ठे करूँगा ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कलकत्ता में इंडिया एसोसिएशन श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता में स्थापित हुआ । 27-12-1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई । यह सच्चाई है कि यह संगठन अंग्रेज़ी शासन को भारत के लिए वरदान मानते थे। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में प्रधान श्री उमेशचन्द्र बनर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण का समापन करते हुए कहा था, ''ग्रेट ब्रिटेन ने हमें शांति और व्यवस्था दी है, हमें रेल दी है, सबसे ज्यादा हमें पश्चिमी शिक्षा दी है ।'' भारतीयों को इस हीनभावना को दूर करने का प्रयत्न महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सर्वप्रथम किया । उन्होंने भारत के प्राचीन गौरव की ओर देश का ध्यान आकृष्ट कर कहा–

भारत संसार का शिरोमणि है, इसकी सभ्यता, धर्म और संस्कृति सर्वोत्कृष्ट है । एक समय भारत ज्ञान-विज्ञान में भी अग्रणी था । यत्न करें तो हम अपने देश के लुप्त गौरव को फिर प्राप्त कर लेंगे ।

इसके लिए महर्षि ने अंग्रेजी शासन के दोष स्पष्ट निर्भीक रूप से जनता के सम्मुख रखते हुए कहा, ''जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि होता है ।'' न्याय-दया के साथ विदेशी शासन में कभी भी ग़रीबों के प्रति समुचित नीति का अनुसरण नहीं होगा । उन्होंने प्रभु से प्रार्थना करते हुए सुनीतियुक्त स्वराज्य की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न करने का आह्वान किया था । वायसराय से अपनी वार्ता में उन्होंने घोषित किया था, ''वह देश से विदेशी शासन जल्दी समाप्त होने के लिए प्रतिदिन ईश्वर से प्रार्थना करते हैं ।''

6. मैं मानव को बंधवाने नहीं छुड़वाने आया हूँ

अनूपशहर का प्रसंग है । एक दिन एक ब्राह्मण स्वामी दयानन्द जी के समीप आया । विनयपूर्वक नमस्ते करके उसने

स्वामी जी के सामने पान भेंट किया। महाराज ने सहज स्वभाव से वह पान मुख में रखा, परन्तु उसका रस लेते ही समझ गए कि वह विषयुक्त है। उन्होंने उस नराधम को कुछ कहा-सुना नहीं, परन्तु बस्ती न्योली करने गंगा पार चले गए। देर तक सब क्रिया कर आसन पर आ विराजे। जैसे रूई में लपेटी आग नहीं छिप सकती वैसे ही पाप भी छिपा नहीं रहता।

स्वामी जी को विष देने की बात तहसीलदार को ज्ञात हुई, उसने स्वामी जी के प्रति भक्ति श्रद्धा के कारण उस अपराधी व्यक्ति को पकड़वाकर बंदीगृह में डाल दिया। फिर स्वामी जी के दर्शन के लिए चल पड़ा। उसे प्रसन्नता थी कि उन्होंने स्वामी जी के शत्रु को दंड देकर बदला लिया है, इसलिए उसे सराहेंगे। परन्तु उसके सामने आते ही स्वामी जी ने दृष्टि हटा ली और बोलना तक बंद कर दिया।

बड़ी प्रार्थना से तहसीलदार ने स्वामी जी से उनकी नाराजगी का कारण पूछा। स्वामी जी ने कहा, ''मैंने सुना हे कि मेरे लिए आज आपने एक मनुष्य को आबद्ध किया है, परन्तु मैं मनुष्यों को बंधवाने नहीं आया, किन्तु छुड़वाने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते, तो हम क्यों अपनी श्रेष्ठता का परित्याग कर दें?''

तहसीलदार स्वामी जी के ऐसे शब्द सुनकर रोमांचित हो उठा, ''उन्होंने क्षमा का ऐसा धनी, शांत मानव न देखा, उसने उस ब्राह्मण को स्वतंत्र कर दिया।

7. ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास के कारण

माघ मास में एक दिन अत्यंत शीतल पछवा पवन बड़े वेग से बह रहा था। स्वामी जी महाराज स्नान-ध्यान से निवृत होकर कुटिया से बाहर बद्धपद्मासन बैठे थे और दर्शन को आए ठाकुर लोग श्रीमुख से प्रवचन सुन रहे थे यद्यपि उन लोगों ने रुई और ऊन

के वस्त्र पहन रखे थे, परन्तु अति शीतकाल से उनके अंग ठिठुर रहे थे। तन कांप रहा था, आँखों से पानी बह रहा था। हाथ-पाँव सुन्न हो रहे थे, परन्तु स्वामी जी के निश्चल भाव से उपदेश कार्य में संलग्न थे। बाणों की भाँति आर-पार करने वाला वायु शरीर को छू रहा था। परन्तु वह अटल थे, अविचल थे; उनकी सहनशीलता देखकर सभी भक्त आश्चर्यचकित थे।

उस समय ठाकुर गोपालसिंह ने हाथ जोड़कर पूछा, ''भगवन्, घोर शीतपात के कारण हम सबके शरीर सिकुड़ रहे हैं, दाँतों से दाँत बज रहे हैं, परन्तु महाराज पर इस महाशीत का किंचित् भी प्रभाव दिखाई नहीं देता, इसका क्या कारण है?'' स्वामी जी ने मुस्करा कर कहा, ''ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है।'' उसने पूछा, ''तो हम कैसे जानें?'' उस समय स्वामी जी ने अपने हाथ के अंगूठे घुटनों पर रखकर ऐसे बल से दबाए कि तत्काल ही उनके भाल पर ओस के कणों की तरह पसीनें की बूंदें चमकने लगीं, तन पर रमाई सारी मिट्टी भीग गई, बगलों मे से पसीना टप-टप करके टपक पड़ा। कड़ाके की सर्दी में इतनी ठंडी पवन के तेज प्रवाह में शरीर का इस प्रकार पसीना-पसीना हो जाना एक कल्पनातीत दृश्य था। सभी मुक्त कंठ से स्वामी जी के योगबल की प्रशंसा कर उठे।

8. क्या आपको सर्दी नहीं लगती?

एक रात स्वामी जी गंगा के दूसरे किनारे समाधि में बैठे थे। अधिक रात हो जाने के कारण गंगा की कल-कल ध्वनि के अतिरिक्त कोई दूसरी आवाज सुनाई नहीं दे रही थी। शुक्ल पक्ष की चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। ऐसे समय बदायूँ के अंग्रेज कलक्टर अपने किसी यूरोपीय मित्र सहित शिकार के लिए गंगा के किनारे बढ़ रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि उस स्थान पर पड़ी जहाँ

स्वामी दयानन्द योगारूढ़ आसीन थे। अपने साथी के साथ वह वहाँ पहुँचे। उन्होंने बालू में दीप्तिमान स्वामी-देह को—चाँदी की विशाल शिला पर तप्त स्वर्ण की प्रतिमा की तरह विराजमान देखा। जब महामुनि ने आँखें खोलीं तब शिष्टाचार प्रदर्शन करते हुए कलक्टर ने कहा—

हमें बड़ा आश्चर्य है, इतना शीत पड़ रहा है, नदी का किनारा है, रात्रि का समय है, और आप हिमसमान शीतल रेती पर लंगोट मात्र लगाए मगन बैठे हैं, क्या आपको सर्दी नहीं लगती?

स्वामी जी कुछ उत्तर देने जा रहे थे कि कलक्टर का साथी बीच में बोल पड़ा, ''हृष्ट-पुष्ट मनुष्य है, खाने को अच्छे माल मिलते होंगे, सर्दी क्या लगेगी?'' स्वामी जी ने हँस कर कहा, 'हम दाल-चपाती खाने वाले क्या माल खाएंगे। बहुत बल लगाया तो कुछ दूध पी लिया। परन्तु आप मांस, अंडे आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं और समय पड़ने पर मदिरपान में भी कोई अड़चन न होती होगी, इसलिए यदि माल खाकर शीत सहा जाता है तो कपड़े उतार कर आइए और थोड़ी देर मेरे साथ बैठिए।'' इस पर वह लज्जित हो गया, विषय बदल कर बोला, ''अच्छा तो बताइए, आपको शीत क्यों नहीं लगता?''इसका सहज से समझ में आने का कारण तो अभ्यास है, आपका मुख सदा नग्न रहता है, इसलिए उसे ढाँपने की इस समय भी जरूरत प्रतीत नहीं होती।'' कलक्टर ने इशारा करके साथी को बहुत बोलने से रोका और स्वामी जी को नमस्कार करके चले गए।

9. वासनाओं को कैसे जीतें?

उन दिनों स्वामी दयानन्द सरस्वती जी मेरठ के एक मंदिर में निवास कर रहे थे। गंगाराम जी नामक एक प्रतिष्ठित नागरिक ने एक दिन अभ्रक भस्म की चर्चा चलाई। स्वामी जी ने कृष्ण अभ्रक

भस्म की एक पुड़िया उन्हें दी। उस व्यक्ति ने सारी भस्म भी देखनी चाहिए। स्वामी जी ने वह भी उन्हें दिखा दी। इस पर गंगाराम ने कहा, ''स्वामी जी, अभ्रक तो बड़ा बाजीकरण औषधि है, इसका सेवन करके, सबको वशीभूत करने वाले कामदेव से आप कैसे बच गए हैं?''

स्वामी ने उत्तर दिया, काम-वासना जीतने का यह विधान है कि एकांत स्थान में रहे, नाच आदि कभी न देखें। अनुचित स्वरूप को देखना, अनुचित शब्द का सुनना और अनुचित वस्तुओं का स्मरण करना परित्याग दें। स्त्रियों की ओर न निहारे, नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करें। इन साधनों से वासना मंद ही जाती है। व्यक्ति जितना वासना की तृप्ति का यत्न करेगा, वह शांत न होकर उतनी ही बढ़ती चली जाएगी। इसलिए विषय-वासना का चिंतन भी न करें। जितेन्द्रिय बनने के अभिलाषी को रात-दिन ओ३म् का जाप करना चाहिये। रात को यदि जप करते हुए आलस्य बहुत बढ़ जाए तो दो घंटा गाढ़ निद्रा लेकर उठ बैठे और पूर्ववत् पवित्र ओ३म् का जाप करना आरम्भ कर दे। बहुत सोने से स्वप्न आने लगते हैं, ये जितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए ठीक नहीं है।

10. लेने-देने का व्यवहार धर्मपूर्वक करो

कर्णवास में एक दिन पं० नन्दकिशोर उपाध्याय ने स्वामी दयानन्द के दर्शनार्थ जाते समय मार्ग में एक खेत से सेम की फलियाँ तोड़ीं और उन्हें स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी तत्काल बोले, ''आप ये फलियाँ चोरी से तोड़कर लाए हो, अतः हम उन्हें ग्रहण नहीं कर सकेंगे।'' पं० नन्दकिशोर सटपटा उठे, भला मैंने किस की चोरी की है? स्वामी जी ने कहा, ''सत्य-सत्य बतलाओ कि ये सेम की फलियाँ खेत के मालिक की अनुमति से तोड़ी थीं?'' उन्हें सच्चाई स्वीकार करनी पड़ी।

इसी तरह कासगंज में स्वामी जी स्नान के लिए पास के एक उद्यान में जा रहे थे, उसी समय महाराज जी के पीछे स्नान के उपकरण लिए रामप्रसाद चला जाता था। एक पका हुआ आम पेड़ से गिर कर मार्ग में पड़ा मिला, स्वामी जी तो उसे लांघ गए, परन्तु रामप्रसाद ने वह फल उठा लिया। इस पर स्वामी जी बोले, ''रामप्रसाद, यह उद्यान-बाग़ तुम्हारा घर नहीं है, इसलिए पराया फल उठाकर तुमने चोरी की है।'' स्वामी जी ने भाषण देते हुए कहा—''जब-जब कोई पदार्थ किसी को देना चाहो अथवा किसी से ग्रहण करना चाहो तो केवल धर्मयुक्त व्यवहार करो।''

11. महर्षि दयानन्द के जीवन का अन्तिम दिन

30.10.1883 ई. से मंगलवार के दिन भयंकर विष का प्रभाव सारे शरीर में फैल गया था, रोम-रोम में अंतर्दाह था। इस कष्टदायी अवस्था में भी वह परमहंस शांत थे, साहस और सहनशीलता की पराकाष्ठा थी। अवस्था गम्भीर होने पर भी स्वामी दयानन्द जी शांत थे, नाई से हजामत करवा शौच-शुद्धि से निवृत्त हो भक्त शिष्य आत्मानन्द से पूछा, ''आत्मानन्द, तुम क्या चाहते हो?'' आत्मानन्द का उत्तर था, ''महाराज, ईश्वर से यही प्रार्थना है आप अच्छे हो जाए।''

महाराज ने सांत्वना स्वर में कहा, ''यह देह पाँचभौतिक है, तुम सब आनंद से रहना। भक्त पुरुषों, धैर्य और साहस रखो, अधीर न हो।'' उसी दिन सांयकाल को चारों ओर दृष्टि डाल स्वामी जी वेदमंत्र पाठ करने लगे, देववाणी संस्कृत में प्रभु की स्तुति की, गायत्री मंत्र बोल समाधिस्थ हो गए फिर 'ओ३म्' का निनाद कर बोल उठे—

हे दयामय सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो; अद्भुत तेरी लीला है।

दीपमालिका की संध्या को छह बजे महर्षि इहलीला समाप्त

कर ज्योतिर्मय प्रभु की शरण में चले गए। भक्त जन निहारते रह गए। पाश्चात्य विज्ञान के विद्यार्थी पं० गुरुदत्त विद्यार्थी नास्तिक वृत्ति होने के बावजूद असह्य वेदना-अंतर्दाह में योगी को आनंदमग्न देख प्रभुभक्त बन गये। सम्पूर्ण जनता योगी की वेदना भरी विदाई से अश्रुपूर्ण थी। परन्तु विदाई का वह दिव्य दृश्य देखकर सभी के हृदय में अद्‌भुत ज्योति छा गई।

8. स्वामी श्रद्धानन्द

1. पतिव्रता नारी

गहरे अंधकार में उबरते हुए युवक मुंशीराम को विशेष सहारा देने वाली एक पारिवारिक घटना थी। पिता ने मुंशीराम को अपनी धर्मपत्नी को बरेली ले आने के लिए घर भेजा। जालंधर जाकर मुंशीराम अपनी पत्नी को बरेली ले आए। एक दिन मुंशीराम साथी-संगियों की कुसंगति में पड़कर खूब शराब पी गए। शराब ने अपना पूरा रंग जमाया, उसी नशे में दो मित्रों के भुलावे में पड़कर एक वेश्या के घर भी जा पहुँचे। उस समय तक केवल महफिलों में नाच-तमाशा देखा था, परन्तु वेश्या के घर जाने का पहला अवसर था। न जाने भीतर क्या भाव पैदा हुए कि वहाँ अधिक देर नहीं ठहरे। 'नापाक नापाक' कहते हुए नीचे उतर आए।

घर पहुँचे, तब भी नशा नहीं उतरा था। बैठक में जाकर तकिए पर सिर देकर पड़ गए। नौकर ने जूते उतारे। नौकर के सहारे ही सीढ़ियों से ऊपर गए। बरामदे में पहुँचते ही उल्टी होने लगी। पत्नी ने आकर संभाला, मुँह धुलाया और मैले कपड़े उतारे। बिस्तर पर लिटाकर माथा और सिर दबाना आरम्भ किया। घृणा, उपेक्षा या तिरस्कार की वहाँ गंध भी नहीं थी। स्नेहमयी माता की ममता, सहोदरा बहन का प्रेम, आदर्श पत्नी की भक्ति, स्वामी भक्त

सेवक की सेवा और परोपकारी पुरुष की उदारता के सब भावों का उस व्यवहार में अभूतपूर्व मिश्रण था। न सोने वाले को भी ऐसे समय नींद आ जाए।

मुंशीराम की पथराई आँखें गहरी नींद में बंद हो गई। रात के एक बजे नींद खुली तो शिवदेवी बैठी हुई पैर दबा रही थी। पानी मांगने पर देवी ने गर्म दूध का भरा हुआ गिलास मुँह को लगा दिया। नशा दूर हुआ। उस समय तक बराबर जागने और भोजन न करने का कारण पूछने पर देवी ने कहा, ''आप के भोजन किए बिना मैं कैसे खाती! अब इतनी देर में भोजन करने में कोई रुचि नहीं।'' मुंशीराम ने अपने पतन की सारी कहानी सुनाकर क्षमा मांगी तब देवी ने तुरंत कहा, ''आप मेरे स्वामी हो। यह सब सुनाकर मेरे सिर पाप क्यों चढ़ाते हो? मुझे तो माता का उपदेश यही है कि आपकी नित्य सेवा करूँ।''

स्वामी श्रद्धानंद जी ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' शीर्षक आत्मकथा में लिखी है, ''उस रात बिना भोजन किए दोनों सो गए और दूसरे दिन मेरे लिए जीवन ही बदल गया।''

2. सच्ची सेवा

गंगा भागीरथी नदी पार करके पुराने गुरुकुल कांगड़ी की बात है। सन् 1916 में विद्यालय के विभाग के पाँचवीं श्रेणी के ब्रह्मचारी देवदत को टाइफाइड हो गया। उसकी देखभाल के लिए बड़े ब्रह्मचारियों की बारी-बारी से ड्यूटी लगाई गई थी। रात्रि के लगभग 12 बजे गए ड्यूटी पर गुरुकुल के ही एक पुराने स्नातक पं० सोमदत्त वेदालंकार बैठे थे। अचानक रोगी के जागने और कराहने की आवाज़ आई। सोमदत्त जी ने विद्यार्थी के माथे पर हाथ रखकर पूछा—भाई देवदत्त, क्या बात है? विद्यार्थी ने कराहते हुए कहा, ''उल्टी-सी आती मालूम देती है।'' और फिर घबराहट से रो

उठा। सोमदत्त जी ने देखा तो रोगी की शय्या के पास रखी चिलमची थूक और पानी से भरी थी। वह उसे साफ कराने के लिए थोड़ी देर में भंगी को लेकर लौटे तो वह सामने का दृश्य देखकर चमत्कृत हो उठे।

सोमदत्त जी ने देखा—महात्मा मुंशीराम जी रोगी विद्यार्थी के सामने झुके खड़े थे। रोगी विद्यार्थी कै कर रहा था और गुरुकुल के आचार्य महात्मा मुंशीराम जी उसे अपने हाथों की अंजलि में कै करा रहे थे। अपने हाथ साफ कराने के बाद मुंशीराम जी बोल उठे, ''सोमदत्त जी, आप जाकर आराम करें। इनकी सेवा के लिए किसी दूसरे ब्रह्मचारी को भेज दो। तुमसे सेवा हो चुकी। क्या रोगी तुम्हारे या भंगी के आने तक प्रतीक्षा कर सकता था।''

3. संन्यासी की दूरदृष्टि

दिसम्बर, 1926 में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का कार्यक्रम सम्पन्न कर वीतराग संन्यासी श्रद्धानंद दिल्ली लौटे। तब डॉ० सुखदेव जी ने स्वास्थ्य जांच की तो मालूम हुआ कि स्वामी जी पर ब्रांको निमोनिया का आक्रमण था। डॉ० अंसारी की चिकित्सा से कुछ ही रोज में नीरोग हो जाने की घोषणा कर दी गई। चिंतित जनता को इस समाचार से कुछ शांति और समाधान मिला। ज्वर उतरते ही उन्होंने वसीयत लिखने और सार्वजनिक धन और सब कार्यों की सद्व्यवस्था करने के लिए कार्यकर्ताओं को बुलाया। लोगों ने टालना चाहा तो स्वामी जी ने कहा, ''अन्दर से यह आवाज़ नहीं उठती कि मैं उठ खड़ा होऊँगा।'' लोगों ने बात दोपहर के लिए टाल दी।

दोपहर को स्वामी जी ने प्रो० इन्द्र जी को निर्देश देते हुए कहा—इस शरीर का कुछ ठिकाना नहीं। तुम एक काम जरूर करना। मेरे कमरे में आर्यसमाज के इतिहास की सामग्री पड़ी हुई है, उसे संभाल लेना और उसे निकाल कर इतिहास जरूर लिख

डालना। इतिहास के लिखने में मुझे माफ नहीं करना। मैंने बड़ी-बड़ी भूलें की हैं, तुम्हें तो मालूम है कि मैं काम करना चाहता था और किधर पड़ गया। ''वर्षों तक गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की चिकित्सा करने वाले डॉ० सुखदेव जी ने उठ बैठने की हिम्मत पैदा करने का नुस्खा ईजाद करने की भावना से ही कहा—स्वामी जी, अब आप अच्छे हो गये हैं, दो दिन में आप रोटी ले सकेंगे और बैठने लगेंगे।'' स्वामी जी ने कहा, ''आप लोग तो ऐसा ही कहते हैं, परन्तु मैं अनुभव कर रहा हूँ, अब तो एक ही इच्छा है, इस रोगी देह से देश का क्या कल्याण होगा, इसलिए चाहता हूँ दूसरे जन्म में नए देह से इस जीवन का काम पूरा करूँगा।''

21 दिसम्बर को व्याख्यान वाचस्पति दीनदयालु जी स्वामी जी से बोले, ''मालवीय जी मुझसे एक वर्ष बड़े हैं, आप मालवीय जी से भी एक वर्ष बड़े हैं, अभी हमें बहुत से काम करने हैं, ऐसे में इतनी जल्दी मोक्ष की तैयारी क्यों करने लगे?'' स्वामी जी ने उत्तर दिया इस कलियुग में मोक्ष की इच्छा नहीं, मैं तो चोला बदलकर भारत में फिर से जन्म लेकर सेवा करना चाहता हूँ। 23 दिसम्बर को शुद्धि सभा के मंत्री स्वामी चिदानंद को प्रधान राजा राम पाल सिंह के नाम अपने स्वास्थ्य की जिज्ञासा के बारे में लिखवाया—अब तो यही इच्छा है—दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि का अधूरा काम पूरा करूँ।

उसी दिन दोपहर को सीढ़ियों में एक युवक को सेवक के रोकने पर उस व्यक्ति ने कहा, ''मैं आपसे इस्लाम के बारे में गुफ़्तगू करना चाहता हूँ। तुम्हारी दुआ से राजी हो जाऊँगा तो बातचीत करूँगा।'' उस व्यक्ति के पानी मांगने पर पानी पीते ही हत्यारे ने मसनद के सहारे बैठे हुए स्वामी जी पर पिस्तौल दाग दी।

23-12-1926 ई० गुरुवार के दिन पाँच हजार वर्ष पहले महाभारत के भीष्म पितामह ने शरशय्या पर पड़े हुए स्वेच्छा से प्राणों का विसर्जन किया था— इसी प्रकार दिल्ली के हृदय सम्राट्

स्वामी श्रद्धानंद जी ने भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति के कुरुक्षेत्र में छाती में गोली खाकर प्राणों का विसर्जन किया था ।

4. कुर्बान हूँ, उस फकीर और उस मिट्टी पर

गुरुकुल कांगड़ी की पुण्यभूमि पर एकत्र आर्यसज्जनों के उस सम्मेलन में वह आर्य संन्यासी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के लिए कोठी, जायदाद, बेटों और सब कुछ न्योछावर करने वाले वीर संन्यासी स्वामी श्रद्धानंद जी के प्रति भाव-विभोर होकर बोल उठे—इस पुण्यभूमि में अनेक बार आया हूँ, रोकर गया हूँ, उस सच्चे फकीर ने सारी सामग्री इकट्ठी की, 30,000 रुपये की जगह 40,000 रुपये इकट्ठे किये । यहाँ जंगल में आकर असंभव कार्य पूरा किया । उन्होंने घर फूंक कर सब कुछ न्यौछावर कर इस जंगल में मंगल कर दिया । उस वीर फकीर के कारनामों को कौन भुला सकता है, जिसने मार्शल लॉ के खिलाफ दिल्ली के चांदनी चौक में गोरी फौज की बंदूकों के सामने लाखों की भीड़ की अगुआनी छाती खोल कर की थी, जिन्होंने मार्शल ला और जलियांवाला बाग़ के हत्याकांड के बाद खून से सने पंजाब में शहीदों की विधवाओं की अरदास पर अमृतसर कांग्रेस में जनता के आँसू पोंछे थे और जिन्होंने उसी साल के आखिरी महीने में जामा मस्जिद की मीनार से एक वैदिक मंत्र द्वारा परमेश्वर की बंदगी की थी । उन साधु संन्यासी ने कहा—

''इस पुण्यभूमि की मिट्टी और फकीर की उस छवि को भी नहीं भूल सकता, जब यहीं से उत्तरी भारत का उन दिनों का सबसे बदनाम डाकू सुल्ताना जो यहाँ बच्चों की तालीम के लिए जमा पैसों को हड़पने के इरादे से आया, इस भूमि और फकीर को सजदा कर वापस लौट गया था ।''

सुल्ताना डाकू को अनेक हत्याओं और डाकों के फलस्वरूप फाँसी की सजा दी गई थी, जब उसकी फाँसी की घड़ी आई तो

अग्रेज़ मजिस्ट्रेट ने पूछा, तुमने सारे उत्तरी शुमाली इलाके में हत्याओं, डकैतियों, गोलीबारी का सिलसिला रखा है, इन आखिरी क्षणों में बतलाओगे, कभी तुम्हें खुदा की बंदगी और इस मुल्क की मिट्टी के प्रति अपने फर्ज की भी याद आई ?''

अंग्रेज़ जज की बुलंद आवाज़ ने उस भयंकर डाकू को जैसे हिला दिया। उसने अपनी आँखें मूंदी, कुछ पल वह और सारा माहौल खामोश हो गया। एक-दो मिनट आँख बंद कर वह बुलंद आवाज़ में बोल उठा—साहब, माफ करेंगे, ज़िन्दगी की सारी तस्वीर का ख़्याल कर रहा था, कभी कोई अच्छाई नेकी की हो, याद नहीं आया, बस दिमाग़ में एक पुरानी सच्ची याददाश्त की बात कौंध गई। मुझे किसी मुखबिर ने खबर दी थी कि गंगा किनारे यहाँ एक बड़ा मदरसा है, जहाँ सैकड़ों बच्चे तालीम पाते हैं, उनकी परवरिश और रहने-सहने-पढ़ने की जरूरी जमा पूँजी यहाँ के दफ़्तर में जमा है। उसे रात के अंधेरे में अपने कब्ज़े में करने के इरादे से उस जमीन पर पहुँचा। रात के 3-4 बज गये थे। देखा डंडा हाथ में उठाए भगवे कपड़े पहने एक फकीर जा रहा था और उसके पीछे उसके शागिर्द खुदा की बंदगी का गाना गाते जा रहे थे। उस सारे माहौल को देख मैं डाका-बाका सब भूल गया और उस खुदा के बंदे फकीर और उसके शगिर्दों की इबादत को सुन कर झूम उठा। तभी मुझे पहली बार खुदा की याद आई थी और उसकी इबादत करते फकीर और उसके शागिर्दों तथा उन्हें पैदा करने वाली मिट्टी को सिजदा कर लौट गया।

5. एक अलौकिक परिवर्तन

सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास के स्वाध्याय ने मुंशीराम जी के चित्त को झकझोर दिया। उस पर हुई एक घटना ने मुंशीराम जी का जीवन बदल डाला। होली के चार-पाँच दिन पहले सवेरे पाँच बजे

घूम कर ज्यों ही वह अनारकली पहुँचे कि सामने से एक मनुष्य सिर पर मांस का टोकरा उठाए दौड़ा चला जा रहा था। भेड़-बकरियों की कटी हुई टांगें टोकरे के बाहर लटकी हुई थीं। मांस-भक्षण के अभ्यासी मुंशीराम जी का दिल वह दृश्य देख कर दहल उठा। चित्त में भारी चिंता पैदा हो गई। दोपहर के समय उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास का भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण फिर पढ़ा तो मांस-भक्षण की सारी बुराइयाँ उनके हृदय में उजागर हो उठीं।

शाम को भोजन के लिए साथियों के साथ ही बैठे। सदा की भाँति मांस का कटोरा भी सामने रखा गया। सुबह की घटना और दिन में सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने उनके उद्वेलित मन को झकझोर डाला कि कटोरा सामने आते ही उन्होंने उसे उठाया और सामने की दीवार पर दे मारा। कटोरा कांसे की धातु का बना था, दीवार से टकराकर कटोरा चूर-चूर हो गया।

साथी समझे कि रसोइए से कुछ भूल हो गई, कटोरे में मक्खी गिर गई है। मुंशीराम जी के साथी रसोइए को भला-बुरा कहने लगे। उन्हें रोक कर मुंशीराम जी बोले, ''रसोइए बेचारे को कुछ मत कहो। मुझे आज मालूम हुआ कि एक आर्य के लिए मांस-भक्षण भी एक महापाप है। फलतः अपनी थाली में मांस रखना सह नहीं सका।''

साथी बोले, ''यह बात है तो कटोरा तोड़ने से कहीं अच्छा था उसे कहकर थाली से उठवा देते।'' परन्तु उन्हें क्या मालूम था कि सुबह की घटना और सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मुंशीराम जी के डांवाडोल मन में एकाएक अलौकिक परिवर्तन कर डाला था।

9. स्वामी विवेकानंद

1. भगवान् में विश्वास

स्वामी विवेकानंद का सम्पूर्ण जीवन एक दीपक के समान है जो सदा अपने प्रकाश से इस संसार को जगमगाता रहेगा और उनका जीवन सदा हम लोगों के लिए एक प्रेरणा स्रोत बना रहेगा ।

एक बार स्वामी विवेकानंद ट्रेन से यात्रा कर रहे थे और सदा की भाँति भगवा कपड़े और पगड़ी पहने हुए थे । ट्रेन में यात्रा कर रहे एक अन्य यात्री को उनका यह रूप बहुत अजीब लगा और वह स्वामी जी को कुछ अपशब्द कहते हुए बोलने लगा– तुम संन्यासी बनकर घूमते रहते हो । कुछ कमाते-धमाते क्यों नहीं, तुम लोग बहुत आलसी हो । लेकिन स्वामी जी दयावान थे उन्होंने उसकी तरफ बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया और सदा की भाँति चेहरे पर तेज लिए मुस्कुराते रहे ।

उस समय स्वामी जी को बहुत भूख लगी हुई थी क्योंकि उन्होंने सुबह से कुछ खाया-पीया नहीं था । स्वामी जी सदा दूसरों के कल्याण के बारे में सोचते थे । अपने खाने का उन्हें ध्यान ही कहाँ रहता था । एक तरफ स्वामी जी भूख से व्याकुल थे वहीं वह दूसरा यात्री उनको अपशब्द और बुरा-भला कहने में कोई कमी नहीं छोड़ रहा था । इसी बीच स्टेशन आ गया और स्वामी जी और वह यात्री दोनों उतर गये । उस यात्री ने अपने बैग से अपना खाना निकाला और खाने लगा और स्वामी जी से बोला–अगर कुछ कमाते तो तुम भी खा रहे होते । स्वामी जी बिना कुछ बोले चुपचाप थके–हारे एक पेड़ के नीचे बैठ गए और बोले मैं अपने ईश्वर पर विश्वास करता हूँ जो वह चाहेंगे वही होगा । अचानक ही कहीं से एक आदमी खाना लिए हुए स्वामी जी के पास आया और बोला क्या आप ही स्वामी

विवेकानंद हैं और इतना कह कर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा और बोला कि मैंने एक सपना देखा था जिसमें स्वयं भगवान् ने मुझसे कहा कि मेरा परम भक्त विवेकानंद भूखा है तुम जल्दी जाओ और उसे भोजन देकर आओ ।

बस इतना सुनना था कि वह यात्री जो स्वामी जी की आलोचना कर रहा था भाग कर आया और स्वामी जी के कदमों में गिर पड़ा । बोला—महाराज मुझे क्षमा कर दीजिए मुझसे बहुत बड़ी भूल हुई है मैंने भगवान् को देखा नहीं है लेकिन आज जो चमत्कार मैंने देखा उसने भगवान् में मेरे विश्वास को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया है । स्वामी जी ने दया भाव से व्यक्ति को उठाया और गले से लगा लिया ।

2. बीस वर्ष बनाम बीस पैसे

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संन्यासी और उपदेशक स्वामी विवेकानन्द कही जाने के लिए नाव की प्रतीक्षा में थे । तब तक वहाँ एक सिद्ध पुरुष पहुँचा । उसने विवेकानंद से पूछा कि वह किस की प्रतीक्षा में है? उन्होंने सहज भाव से कहा, ''नाव की प्रतीक्षा में हूँ, स्वामी जी ।'' इस पर उसने चुटकी लेते हुए कहा, ''क्या नाव की प्रतीक्षा में हो? मेरे साथ चलो । मैंने बीस वर्षों की तपस्या में ऐसी सिद्धि प्राप्त कर ली है कि पानी पर चलकर नदी पार कर लेता हूँ ।''

इतना कह कर वह व्यक्ति पानी पर चलने लगा । तब तक नाव आई और विवेकानन्द भी उस पर सवार होकर पार हो गए । उस पार दोनों फिर मिले । सिद्ध पुरुष अपने पर गर्व कर रहा था । विवेकानंद ने उतराई के 20 पैसे देकर सिद्ध पुरुष की ओर मुखातिब होते हुए कहा, ''स्वामी जी, आपने 20 पैसों के लिए 20 वर्षों की कठिन तपस्या व्यर्थ ही गंवा दी । अगर उन 20 वर्षों में जन कल्याण और जन्म भूमि के लिए कुछ किया होता, तो समय

सार्थक हुआ होता। विवेकानंद का तर्क सुन कर उस सिद्ध पुरुष का सिर शर्म से झुक गया।

3. समस्या का सामना

अचानक आई समस्या भी कभी-कभार बहुत बड़ी सीख दे जाती है। एक बार की बात है। स्वामी विवेकानंद जी बनारस की एक संकरी गली से गुजर रहे थे। आगे रास्ते पर कुछ बन्दर थे। स्वामी जी बढ़ें तो कैसे? वह लौटने लगे, तो बन्दर भी उनके पीछे मुड़ गए। अतः स्वामी जी दौड़ने लगे। बन्दर भी उसी गति से दौड़ कर उन्हें तंग करने लगे, उनके कपड़ों को जगह-जगह से फाड़ डाला। स्वामी जी हक्के-बक्के थे।

तब एक गृह स्वामी ने उन्हें देखा। उसने ललकार देते हुए कहा, ''भागो मत, बंदर का ही पीछा करो अथवा वहीं डटे रहो।'' उन्हें बल मिला और डटकर सामना करने लगे। थोड़ी ही देर में बन्दर भाग खड़े हुए। पिंड छूटने पर उन्हें लगा कि बन्दरों ने बहुत बड़ी सीख दी है—कठिनाइयों से भागना नहीं, बल्कि डटकर मुकाबला करना चाहिए, अन्यथा विपत्ति ही पीछा करती रहेगी।

4. परमात्मा का अनुभव

कलकत्ता के दक्षिणेश्वर काली मन्दिर पर नरेन्द्र नामक एक तेजस्वी युवक मन्दिर के पुजारी और हिन्दुओं के महान् अध्यात्मवादी पथ-प्रदर्शक स्वामी रामकृष्ण परमहंस से ईश्वर के अस्तित्व के बारे में अनेक तर्क-वितर्क करने लगा। संत ने कई प्रकार से समझाने की कोशिश की, परन्तु वह ठोस प्रमाण के बिना कुछ मानने को तैयार ही नहीं था। अन्त में स्वामी जी ने उसके गाल पर एक जोरदार चांटा लगा दिया और पूछा, ''युवक, क्या कुछ अनुभव हो रहा है? उसने कहा, ''क्यों नहीं? चोट जो लगी है।''

तब स्वामी जी ने उसे समझाते हुए कहा, ''नरेन्द्र, जिस प्रकार

चोट का केवल अनुभव कर रहे हो, उसे देख नहीं रहे हो, उसी तरह ईश्वर की सत्ता का केवल अनुभव किया जा सकता है, उसे देखा नहीं जा सकता है। वह युवक और कोई नहीं? बाद में बने उनके सच्चे शिष्य और स्वामी विवेकानन्द थे।

5. दो दृष्टियों का भेद

स्वामी विवेकानन्द सन् 1893 में विश्व धर्म सम्मेलन के विषय में अमेरीका के शिकागो एवं दूसरे नगरों में गए। एक दिन वह नागरिकों की एक सभा में भारतीय संस्कृति की गौरवपूर्ण देन पर प्रकाश डाल रहे थे कि अचानक उन्हें एक अमेरीकी विद्वान् ने कुछ टोकते हुए व्यंग्य एवं उपहास भरे शब्दों में कहा, ''आपकी भारतीय संस्कृति के प्रणेताओं और उनके सृजन करने वालों की प्रशंसा क्या करें, उन्होंने धन की देवी लक्ष्मी का वाहन तो उल्लू को बनाया है और विद्या सरस्वती की देवी का वाहन 'हंस' को कहा है।''

उस व्यंग्य बाण से तनिक भी उत्तेजित न होते हुए स्वामी विवेकानन्द ने हल्की मुस्कुराहट से उत्तर दिया, ''महोदय, यही तो आपकी और हमारी संस्कृति का अंतर है। हमारा दर्शन मानता है कि धन या लक्ष्मी आने पर व्यक्ति आँख रहते हुए भी देखना बंद कर देता है, पूरी तरह उल्लू की तरह हो जाता है, इसीलिए लक्ष्मी की सवारी उल्लू को चुना गया, इसके मुकाबले में सरस्वती विद्या की कसौटी है, जो मानव के विवेक को जाग्रत करती है, इसीलिए सरस्वती की सवारी हंस कहा गया है। यही दोनों दृष्टियों का अंतर है।'' उल्लू आँखें होकर भी नहीं देखता, ऐसे ही धन आने पर मानव भी अंधा हो जाता है। दूसरी ओर सरस्वती जाग्रत होने पर मानव हंस की भाँति दूध और पानी का अन्तर कर सकता है।

6. इनसान की कसौटी

स्वामी विवेकानन्द अमेरीका गए। वहाँ उन्हें एक महानगर में एक राजपथ पर जाने का अवसर मिला। वह एकाकी अपने भगवे

वस्त्र पहने जा रहे थे कि कुछ दबंग युवा महिलाओं ने उनके भगवे कपड़ों का उपहास किया और बड़ी उपेक्षा से बोली, ''देखो, इस आदमी को देखो और इसके कपड़े देखो।''

स्वामी जी एक क्षण चुप रहे। उन्होंने उन महिलाओं की ओर देखा तो वह सब मिलकर उनका और उनके कपड़ों का उपहास करने लगीं। स्वामी जी उन महिलाओं से बड़ी नम्रता से परन्तु ओजस्वी शब्दों में बोले, ''देवियो, जहाँ तक मैं आप लोगों की वेशभूषा और बोलचाल से अनुमान लगाता हूँ, उससे कह सकता हूँ कि किसी भी व्यक्ति चाहे वह आदमी हो या औरत, उसकी पहचान उसकी वेशभूषा और पहनावे से नहीं होती, उसकी असली पहचान तो उसके अपने चरित्र, व्यवहार और इनसानियत से होती है। अब आप लोग स्वयं फैसला करें कि मेरे कपड़े उपहास के पात्र हैं या आप जैसी शिक्षित महिलाओं का एक विदेशी फकीर यात्री के साथ आपका यह व्यवहार? यही कह सकता हूँ कि आप उस देश के निवासी हैं जहाँ दर्जी आपका व्यक्तित्व बनाता है और मैं उस देश का प्रतिनिधि हूँ जिसका परिचय उसके चरित्र से होता है।''

7. धर्म की महत्ता का आचरण

स्वामी विवेकानंद विश्व भ्रमण पर थे। वे अपने उपदेशों से भारतीय संस्कृति व धर्म की श्रेष्ठता का शंखनाद कर रहे थे। इसी बीच जापान के एक विद्वान् ने उनसे पूछा—''भारत में गीता, रामायण, वेद, उपनिषद् आदि का इतना उच्च ज्ञान व दर्शन उपलब्ध है, फिर भी भारतवासी पराधीन और निर्धन क्यों बने हुए हैं?'' इस पर स्वामी विवेकानन्द ने उत्तर दिया—सर्वश्रेष्ठ व शक्तिशाली बन्दूक से वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता। यही विडम्बना है कि अपने श्रेष्ठ धर्म व संस्कृति के होते हुए भी भारतवासी तद्नुरूप उसका आचरण नहीं करते। धर्म की महत्ता उसके आचरण में निहित है।

8. पहले स्वयं को जानो

स्वामी विवेकानन्द के प्रवचनों से प्रभावित होकर किसी ने कहा–''लगता है आपकी पहुँच ईश्वर तक है। आप मुझे उस तक पहुँचा दीजिए। उसको मिलने का स्थान बता दीजिए। स्वामी जी ने कहा–''आप अपना पता मुझे लिखा जाइये। जब प्रभु को फुरसत होगी तब उसे आपके घर ही भेज दूँगा। वह व्यक्ति अपने मकान का पता लिखाने लगा।

स्वामी जी ने कहा–''यह तो ईंट-चूने से बने घरोंदे का पता है। आप स्वयं अपना पता बताइये कि आप कौन हैं? किस प्रयोजन के लिए नियत थे और क्या कर रहे हैं?'' व्यक्ति इनके प्रश्न में छिपी दार्शनिकता का संकेत समझा और इस नतीजे पर पहुँचा कि पहले आत्म सत्ता के स्वरूप और उद्देश्य का पता लगाना चाहिए बाद में ही प्रभु मिलन की बात बनेगी।

9. पादरी लज्जित हुए

स्वामी विवेकानंद जी जब अमेरीका में गये वे चरित्र की ढाल लेकर गये थे। एक दिन की बात है कि कुछ अमेरीका पादरी स्वामी विवेकानंद जी के प्रवचन सुनकर ईर्ष्या-द्वेष करने लगे। अतः उन्होंने स्वामी विवेकानंद जी को बदनाम करने के लिये एक षड़यंत्र रचा।

एक अत्यंत सुन्दर लड़की को धन का लालच देकर सिखाया कि तुम ऐसी शरारत करना, हम फोटो ले लेंगे और उसे समाचार पत्रों में छपवा देंगे कि स्वामी विवेकानंद एक बदमाश व्यक्ति है। अतः षडयंत्र के अनुसार एक दिन स्वामी विवेकानंद एक बाग़ में एक बैंच पर ध्यान में बैठे हुए थे कि वह अत्यंत सुन्दर लड़की उनकी गोद में जाकर बैठ गई और उनका मुख चूमने लगी। पादरियों ने

इस अश्लील दृश्य का फोटो भी ले लिया। उस लड़की ने स्वामी विवेकानंद जी से पूछा--

जब मैंने आपकी गोद में बैठकर आपको चूमा था तो आप को कैसा लगा?

स्वामी विवेकानंद जी ने उत्तर दिया--

बेटी! मैं ब्रह्मचारी हूँ। मेरी बेटी नहीं है। जब तुम गोद में बैठकर मुझे चूम रही थी तो मुझे ऐसा लगा कि जैसा मैंने कभी-कभी बच्चियों को अपने-अपने पिता को चूमते देखा है।

स्वामी विवेकानंद जी के ये शब्द सुनकर वह लड़की फूट-फूट कर रोने लगी और उसने स्वामी विवेकानंद जी से कहा--

मैं पापिन हूँ, मैं पापिन हूँ।

स्वामी विवेकानंद जी ने उत्तर दिया-- बेटी! कैसे? तुम पापिन हो।

मैं तो आपके विरुद्ध षडयंत्र करने को आई थी और वे फोटो भी ले गये।

स्वामी विवेकानंद ने उत्तर दिया--

दुनियाँ ले जाओ फोटो! दुनियाँ चाहे हज़ार फोटो ले जाओ। विवेकानंद को दाग़ नहीं लग सकता। वह चरित्र की ढाल लेकर आया है।

दूसरे दिन उस लड़की ने उत्तर दिया--

विवेकानंद तो ईसा से भी महान् हैं।

अतः यदि आपका चरित्र महान् है तो संसार आपके आगे झुक जायेगा। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में--

निर्धन धनवान से डरता है।

निर्बल बलवान से डरता है।

मूर्ख विद्वान् से डरता है ।

परन्तु चरित्रवान से ये तीनों डरते हैं ।

10. पारस का स्पर्श

स्वामी विवेकानन्द राजस्थान की एक रियासत खेतड़ी के राजा के अतिथि थे । पुत्र जन्म के आनन्द में राजा ने राजनर्तकी को बुलाया । राजनर्तकी को देखते ही स्वामी जी वहाँ से उठ गए । उसने नृत्य करने से मना कर दिया, परन्तु मैनाबाई भावविभोर हो सूरदास का यह पद गा उठी–

हमारे प्रभु, औगुन चित्त न धरौ ।

समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोइ पार करौ ।

इक लोहा पूजा में राखता, इक घर बधिक परौ ।

सो दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ।

इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ ।

जब मिलि गए तब एक वरन है, गंगा नाम परौ ।

तन माया, ज्यो ब्रह्म कहावत, स्वर सु मिलि बिगरी ।

कै इनकी निरधार कीजिए कै प्रन जात टरौ ।

गीत की ये पंक्तियाँ सुनकर स्वामी जी भाव विभोर हो उठे । वह अपनी कुटिया से बाहर आए और राजनर्तकी को प्रणाम कर बोल उठे–

''माँ, आज तुमने जीवन की सच्ची शिक्षा दी है ।''

राजनर्तकी संत के चरणों में प्रणाम कर बोल उठी, ''भगवन्, यदि आप जैसे संत-महात्मा भी हमसे घृणा करेंगे तो हमारा उद्धार कौन करेगा ? आप तो पारस हैं, आपका स्पर्श तो जंग खाए लोहे को भी स्वर्ण-सा खरा बना सकता है ।''

11. माँ होती है दुनियाँ में महान्

एक बार एक जिज्ञासु व्यक्ति ने स्वामी विवेकानंद से पूछा, ''संसार में माँ की महानता क्यों गाई जाती है ?'' स्वामी जी ने

मुस्कुराते हुए कहा, ''5 सेर का एक पत्थर ले आओ।'' जब वह व्यक्ति पत्थर ले आया तो स्वामी जी ने उससे कहा, ''इसे कपड़े से लपेट कर पेट पर बांध लो और 24 घंटे बाद मेरे पास आना।''

उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया लेकिन कुछ घंटों में ही उसके लिए काम करना मुश्किल हो गया। उसे दिन में ही तारे दिखाई देने लगे। तब वह स्वामी विवेकानंद जी के पास पहुँचा और बोला, ''अब मैं इसे नहीं उठा सकता, सवाल पूछने की इतनी बड़ी सजा?''

स्वामी जी ने कहा, ''इस पत्थर का बोझ तुमसे कुछ घंटे भी नहीं सहा गया और माँ पूरे 9 महीने तक शिशु का बोझ उठाती है। इस बोझ के साथ वह सारा काम करती है, वह कभी परेशान नहीं होती। माँ जैसा सहनशील कौन है? इसलिए माँ की महिमा सबसे अधिक है।''

10. स्वामी रामतीर्थ

1. कुशाग्र बुद्धि बालक

स्कूल चल रहा था। छात्र दो कतारों में बैठे अध्यापक से पाठ पढ़ रहे थे। पाठ समाप्त होने पर अध्यापक ने श्याम पट (Black Board) पर एक लकीर खींची और छात्रों से प्रश्न किया—''बच्चों तुममें से कोई लकीर को बिना मिटाए छोटी कर सकता है।'' सभी छात्र चुप रह गये। किसी के पास कोई उत्तर नहीं था। एक छात्र उठा और श्याम-पट के निकट आया। उसने अध्यापक के हाथ से चॉक लेकर श्याम-पट पर खींची हुई लकीर के पास ही, उससे एक बड़ी लकीर खींच दी।

अध्यापक उस छात्र के बुद्धिचातुर्य से अवाक् रह गया और विद्यार्थियों से बोले— यह याद रखो कि जीवन में महान् बनने के लिए किसी को मिटाना आवश्यक नहीं है। इसके लिए तो हमें स्वयं

ही अपने कार्यों द्वारा औरों से आगे बढ़ना होगा ।'' –यह अध्यापक थे–प्रोफेसर तीर्थराम । प्रायोगिक प्रतीकों के माध्यम से शिक्षा देने की यह उनकी अपनी विधि थी ।

2. आत्मीयतापूर्ण वाणी का प्रभाव

जहाज सेनफ्रांसिस्को बन्दरगाह पर रुका । जहाज खड़ा होते ही सभी यात्री जल्दी-जल्दी अपना सामान संभालने लगे । सबमें उतरने की जल्दी और उत्सुकता दिखाई देने लगी । जहाज में एक तरफ एक व्यक्ति शान्तभाव से डैक पर खड़ा था । उसे कुछ देर तक एक अमेरिकन व्यक्ति देखता रहा और अन्त में बोला– ''क्यों महाशय, आपको यहाँ उतरना है क्या? अपना सामान क्यों नहीं संभालते?''

व्यक्ति स्वाभाविक मुस्कराहट की मुद्रा में प्रत्युत्तर देते हुए बोला–''मेरे पास कोई सामान नहीं है ।'' तो पास में पैसे तो होंगे ही, जिससे खाने-पीने का काम चलता है? यह तुरन्त दूसरा प्रश्न हो उठा । ''मैं अपने पास पैसे भी नहीं रखता ।'' ''तब तो यहाँ कोई आपका मित्र होगा, जिसके यहाँ ठहरना होगा? यह उस व्यक्ति का तीसरा प्रश्न था ।

स्वामी जी युवक को प्रत्युत्तर देते हुए बोले–''हाँ, यहाँ हमारा एक मित्र है, जिस के यहाँ हमें रुकना है और जो हमारी सब सहायतार्थ करेगा ।'' वह व्यक्ति कौन है?'' सच्चे वेदान्ती रामतीर्थ जी हँसे और उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए बोले–''आप ही मेरे मित्र हैं ।''

3. विचारों का महत्त्व

स्वामी रामतीर्थ अमेरीका में महिलाओं की शंकाओं का समाधान कर रहे थे । धर्म की अनेक गुत्थियाँ सुलझाते जा रहे थे । तब तक एक युवती पूछ बैठी–'कृष्ण अधिकतर गोपियों के मध्य

रहते थे। क्या युवतियों के मध्य घिरा रहने वाला व्यक्ति पवित्र हो सकता है?' इसमें कोई शंका की बात है? व्यक्ति के चरित्र का सम्बन्ध तो उसके विचारों से है। विचारों की पवित्रता उसे कभी विचलित नहीं होने देती।

'मैं इस बात पर विश्वास नहीं करती।' इतना सुनते ही बिना कुछ कहे सुने स्वामी जी अपना आसन छोड़ भागने लगे। काफी दूर निकल जाने पर वह खड़े होकर पीछे की ओर देखने लगे। उनमें से अधिकतर महिलाएँ स्वामी जी के पीछे-पीछे दौड़कर आ रही थीं। जब वे सभी महिलाएं निकट आ गई तो स्वामी जी ने पूछा—''अच्छा बताइये क्या मैं अपवित्र हो गया। नहीं! बिल्कुल नहीं!! फिर योगिराज कृष्ण को गोपियों से घिरे रहने पर कैसे अपवित्र कहा जा सकता है।'

4. अब और कलंक नहीं

स्वामी रामतीर्थ की विद्वता तथा ओजस्वी वाणी से प्रभावित होकर अमेरीका की 18 यूनिवर्सिटियों ने मिलकर उन्हें एल.एल.डी. की उपाधि देने का प्रस्ताव रखा। जिसे उन्होंने सधन्यवाद अस्वीकार करते हुए कहा—'स्वामी और एम.ए. ये दो कलंक पहले ही नाम के आगे-पीछे लगे हुए हैं अब तीसरे कलंक को कहाँ रखूंगा?

यश, कीर्ति, लोकैषणा, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, पूजा, मान, बढ़ाई के फेरे में पड़कर सन्तों और लोक-सेवियों का अहंकार उभरता है। इसलिए सच्चे संत मान-बढ़ाई से सदा बचते रहते हैं।

5. इन्द्रियों को वश में रखने की विधि

स्वामी रामतीर्थ जब प्रोफेसर तीर्थराम थे, तब लाहौर के एक कॉलेज में पढ़ाते थे। वह रहते थे लुहारी दरवाजा में। कॉलेज से घर को आ रहे थे, तो लुहारी दरवाजे में उन्होंने एक व्यक्ति को टोकरी में रखकर नींबू बेचते हुए देखा। पीले रंग के रसभरे नींबू थे। मुख

में पानी आ गया। जिह्वा ने कहा–''क्रय कर लो, उनका स्वाद बहुत उत्तम है।''

तीर्थराम थोड़ी देर रुके। फिर आगे बढ़ गये। आगे जाकर जिह्वा फिर मचली, उसने कहा–''नींबू अच्छे तो थे, नींबू खाने में हानि क्या है?''

तीर्थराम उल्टे आये। नींबुओं को देखा। वास्तव में बहुत उत्तम थे। उन्हें देखकर फिर घर की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर गये तो जिह्वा फिर चिल्ला उठी–''नींबू का रस तो बहुत अच्छा है। नींबू तो खाने की चीज़ है। उसे खाने में पाप क्या है?

तीर्थराम पुनः नींबू वाले के पास आ गये। दो नींबू मोल ले लिये। घर पहुँचे। देवी से कहा–''चाकू लाओ।'' उसने चाकू लाकर रख दिया। तीर्थराम चाकू और नींबू को अपने समक्ष रखकर बैठ गये। बैठे रहे देखते रहे। अन्दर से आवाज़ आई–''इन्हें काटो, काटने में क्या हानि है?''

रामतीर्थ ने चाकू उठाया और एक नींबू को काट दिया। मुख में पानी भर आया। अन्दर से फिर प्रेरणा हुई–''इसे चखकर तो देखो, इसका रस बहुत उत्तम है।''

रामतीर्थ ने एक टुकड़े को उठा लिया, जिह्वा के समीप ले गये। नींबू को उसके साथ लगने नहीं दिया। अन्दर से किसी ने पुकारकर कहा–''तू क्या इस जिह्वा का दास है? जो यह जिह्वा कहेगी, वही करेगा? जिह्वा तेरी है, तू जिह्वा का नहीं।'' समीप खड़ी पत्नी ने कहा–''यह क्या करते हो? नींबू को लाये, इसे काटा, अब खाते क्यों नहीं?''

जिह्वा ने कहा–''शीघ्रता करो। नींबू का स्वाद बहुत उत्तम है।'' रामतीर्थ शीघ्रता से उठे। कटे और बिना कटे हुए दोनों नींबुओं को उठाकर गली में फेंक दिया और प्रसन्नता से नाच

उठे—''मैं जीत गया ।'' यह है इन्द्रियों को वश में करने की विधि ।

6. देश का सम्मान सर्वोपरि

यह उन दिनों की बात है, जब स्वामी रामतीर्थ जापान में थे । स्वामी जी रेल से एक शहर से दूसरे शहर घूम रहे थे । उन दिनों वह अन्न नहीं खाते थे, फलाहार ही करते थे । एक दिन ऐसा हुआ कि वह गाड़ी से यात्रा कर रहे थे और उन्हें खोजने पर भी कहीं फल नहीं मिल सके । स्वामी जी को तेज भूख लग रही थी । गाड़ी एक स्टेशन पर ठहरी ।

स्वामी जी ने इधर-उधर नजर दौड़ाई, मगर उन्हें फल न दिखाई दिये । सहसा उनके मुख से निकल पड़ा, ''लगता है जापान फलों के मामले में बड़ा गरीब है ।'' स्वामी जी के डिब्बे के सामने खड़े एक युवक ने उनकी यह बात सुन ली । वह अपनी पत्नी को गाड़ी में बिठाने आया था । यह सुनकर वह दौड़ा-दौड़ा स्टेशन से बाहर गया और एक टोकरी फल लेकर स्वामी जी के पास आया और बोला, ''यह लीजिए फल । आपको इनकी जरूरत है ।''

स्वामी जी ने समझा, शायद यह कोई फल बेचने वाला है । उन्होंने फल ले लिए और पूछा, ''इनका मूल्य कितना है?'' युवक न कहा, ''इनका कोई मूल्य नहीं है, ये आपके लिए हैं ।'' स्वामी जी ने फिर पैसे लेने का आग्रह किया तो युवक बोला, ''आप फलों की कीमत देना ही चाहते हैं तो आपसे प्रार्थना है कि अपने देश जाकर किसी से यह न कहें कि जापान फलों के मामले में गरीब देश है । बस यही इनका मूल्य है ।'' रामतीर्थ उस जापानी युवक का उत्तर सुनकर बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने मन ही मन सोचा कि जिस देश का प्रत्येक नागरिक अपने देश के सम्मान का इतना ध्यान रखता है, वह देश सचमुच महान् है ।

11. पंडित रामप्रसाद 'बिस्मिल'

(1)

अमर शहीद श्री पंडित रामप्रसाद बिस्मिल को जब फांसी पर ले जा रहे थे तो कुछ अंग्रेज़ और कुछ अंग्रेज़ों के चमचे बिस्मिल को देखने आये थे कि वह नौजवान कैसा है जिसने अंग्रेज़ सरकार की नाक में दम किया हुआ है। उन्होंने जब बिस्मिल को फांसी की ओर जाते देखा तो देखकर दंग रह गये। क्योंकि बिस्मिल ऐसे जा रहा था जैसे अपनी शादी में दूल्हा जाता है। अर्थात् छाती तानकर चल रहा था।

वहाँ खड़े हुए लोगों में कानाफूसी होने लगीं एक कह रहा था कि सारा देश आराम से कमा खा रहा है इसे क्या सूझी कि बग़ावत करने लगा ऐसे युवक को तो फौज में अच्छी नौकरी मिल सकती है। दूसरे ने कहा कि इसकी क़िस्मत ही खराब है। तीसरे ने कहा कि यह पागल हो गया है।

यह सब बातें बिस्मिल के कानों में पड़ गयी थी, अन्ततः बिस्मिल जब फांसी के तख्ते पर खड़ा हो गया तो उसने तभी कहा था कि कुछ लोग मुझे सिरफिरा कहते हैं, कुछ बदनसीब कहते हैं, कुछ मुझे पागल भी कहते हैं, परन्तु यह सब कहने वालो कान खोलकर सुन लो–

हमारे दिल दिमाग़ों में भरे खुशियों के लच्छे हैं।
हमें पागल ही रहने दो हम पागल ही अच्छे हैं।।

(2)

रामप्रसाद बिस्मिल को जब फांसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया तो एक बार फिर पूछा कि यदि कोई अन्तिम इच्छा हो तो बताओ। अब आप इस दुनियाँ में कुछ क्षणों के मेहमान हैं।

बिस्मिल ने कहा कि यदि आप मेरी अन्तिम इच्छा जानना ही चाहते हैं तो मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि केवल तीस सैकिंड के लिये मेरे हाथ खोल दो ।

क्योंकि फांसी के समय हाथ पीछे को बांध दिए जाते हैं जिससे ये फांसी के फंदे से खींचातानी न कर सके । अंग्रेज़ बिस्मिल की अन्तिम इच्छा सुनकर डर गये कि कहीं ऐसा न हो कि यह हाथ खोलते ही कुछ उपद्रव कर बैठे और बिस्मिल की अन्तिम इच्छा अस्वीकार कर दी गयी ।

बिस्मिल ने हँसकर कहा कि देखो अंग्रेज़ कितने भयभीत हैं? मैं तो हथकड़ी इसलिए खुलवाना चाह रहा था कि हाथ पीछे बंधे हैं और फांसी का फंदा आगे से गले में ड़ाला जायेगा यदि हाथ खुल जाते तो एक बार इस फंदे को होठों से चूम कर प्यार कर लेता और अपनी बात को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया–

लबे दम भी न खोली जालिमो ने हथकड़ी मेरी ।
तमन्ना थी कि फांसी से लिपटकर प्यार करता मैं ।।

(3)

रोशन, अश्फाक, बिस्मिल और लाहिड़ी इन चारों को जब फांसी की सज़ा बुल चुकी तो अनेक लोगों ने इन चारों की कम आयु और सुन्दरता को देखकर इनसे कई बार कहा कि बिस्मिल तुम माफी मांग लो तो जान बच जायेगी, आपकी फूल सी खिलती जवानी को देखकर हमारा धैर्य टूट चुका है, आपको फांसी लग जायेगी तो तुम चारों के सुन्दर, सलोने शरीर हमारी आँखों से ओझल हो जायेंगे, हमें यह भी पता है कि हम तुम्हारे स्वभाव के विपरीत आपको सलाह दे रहे हैं । परन्तु क्या करें? हम विवश हैं । बिस्मिल ने कहा कि श्रीमान जी माफी मांगने का तो सवाल ही नहीं है ।

कृपया ऐसी सलाह आप न दें और आप यह न समझना कि हम जीवन से निराश हो गये हैं और हम जीना नहीं चाहते, ज़िन्दगी हमें भी उतनी ही प्यारी है जितनी आपको है परन्तु अन्तर यह है कि हमें जान से भी अधिक प्यारी अपनी स्वतंत्रता है, माफी मांग कर तो मैं गुलामी की हालत में एक क्षण भी जीना नहीं चाहता ।

मैं अपने जीवन से निराश नहीं हूँ जो जीवन से निराश होकर मर जाते हैं वे वीर नहीं बलिक कायर होते हैं और हम चारों की कुर्बानी से सबसे बड़ा लाभ तो यह होगा कि देश की जवानी जाग उठेगी । हज़ारों युवा मैदान में आयेंगे और अंग्रेज को अपने देश से निकालकर ही दम लेंगे, हमारे खून की बूंद जहाँ भी पड़ेगी तो उस बूंद से एक बिस्मिल और हज़ारों बूंदों से हज़ारों बिस्मिल और अश्फाक तैयार हो जायेंगे और मस्ती से झूमकर एक शेंर कहा–

बिस्मिल, अश्फाक, रोशन, लाहिड़ी मरते अत्याचार से ।
होंगे हज़ारों वीर पैदा, हमारी लहू की धार से ।।

(4)

अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर की जेल में 19-12-1926 ई० को फांसी लगनी थी । प्रातः 4 बजे जल्लाद ने फांसी की कोठरी का दरवाज़ा खटखटाया । बिस्मिल उस समय शौचादि से निवृत्त होकर सन्ध्या और व्यायाम करके तैयार बैठे थे, उसे पता था कि अंग्रेज़ ब्रह्ममुहूर्त में ही फांसी दे देते हैं क्योंकि उस समय जेल के सारे बन्दी सोये हुए होते हैं तो कोई उपद्रव होने का खतरा नहीं होता ।

कहते हैं कि अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का फांसी की कोठरी में रहते हुए कई किलो वजन बढ़ गया था । पाठक विचार करें कि जिस मृत्यु को समीप आया हुआ जानकर अच्छे से अच्छे लोगों का दिल भी दहल जाता है, बिस्मिल उसी मृत्यु को निकट देखकर प्रसन्न हो रहा है, यदि उसे प्रसन्नता न होती तो वजन बढ़ने

का प्रश्न ही नहीं था। आप अनुमान लगा सकते हैं कि बिस्मिल किस मिट्टी का बना हुआ था? वह कितना आत्मज्ञानी था?

बिस्मिल इस बात को पूरी तरह समझ चुका था कि शरीर के नष्ट होने से आत्मा का कुछ बिगड़ने वाला नहीं। मैं आत्मा हूँ शरीर नही हूँ। यह तो एक दिन नष्ट होना ही है। इसलिये वे मृत्यु को मित्र समझते थे। जब जल्लाद ने आकर कहा कि क़ैदी सम्भल जाओ, समय हो चुका है तुम्हें फांसी लगनी ही है।

जल्लाद के मुख से अपने प्रति क़ैदी के इन शब्दों को सुनकर बिस्मिल को क्रोध आ गया और उन्होंने जल्लाद को फटकारते हुए जो शब्द कहे थे, उन्हीं शब्दों को कविता का रूप देकर कोयले से दीवार पर लिख दिया और जल्लाद से कहा कि चल फांसी का फंदा तैयार कर। बिस्मिल के ये शब्द आज भी वायुमण्डल में गूंज रहे हैं।

देखकर जल्लाद को आते हुए,
मेरे शुष्क होंठों पर हँसी आ गयी।
आँख चमकी, भौं तनी, गर्व की,
आभा मेरे बदन पर छा गयी।।
संभल क़ैदी आकर जल्लाद ने कहा,
मैं कह उठा क़ैदी बताता है किसे।
मैं नहीं हूँ क़ैदी, मैं हूँ आत्मा,
क़ैद होता है वही, हो देह पर ममता जिसे।।

12. सुभाष चन्द्र बोस

1. देश के लिए सर्वस्वदान

घटना उस समय की है जब दूसरे महायुद्ध के दिनों में आजाद हिन्द फौज बर्मा के मोर्चे पर अंग्रेज़ी फौजों से लड़ रही थी। आजाद हिन्द फौज के संसाधन सुदृढ़ करने के लिए नेता जी

सुभाषचन्द्र बोस को स्वर्णाभूषणों और सोने से तोला जा रहा था। उसी समय दो सैनिक महिलाएं एक सत्रह वर्षीया किशोरी को सहारा देते हुए तुलादान-स्थल तक लाई। उस स्त्री के बाल बिखरे हुए थे। मांग का सिंदूर फैला हुआ था। रोने से उस नारी की आँखें लाल हो गई थी। उसके हाथ में मंगलसूत्र, सुहाग का चिह्न टीका आदि थे। उसने इन गहनों को कस कर पकड़े हुए था। नेता जी ने प्रश्नसूचक मुद्रा में तीनों महिलाओं को देखा।

सैनिकों ने नेता जी को सूचना दी—कुछ दिन पूर्व ही इस महिला का विवाह हुआ था। विवाह के तुरन्त बाद उसके पति को युद्ध के मोर्चे पर जाना पड़ा। कल बर्मा के मोर्चे पर इसके पति शहीद हो गए। यह नारी अपने सारे गहने देश के लिए न्यौछावर करने आई है।

नेता जी स्तब्ध हो गये। कुछ देर बाद उस नारी की ओर मस्तक नमन करते हुए बोले, ''माँ, जिस देश में तुम जैसी सर्वस्व न्यौछावर करने वाली देवियाँ हैं, उसे कोई भी ताकत ज्यादा दिन तक गुलाम नहीं रख सकती।''

2. सेवा में ही उलझ गया

23 -1-1997 ई० के दिन भारत के महान् स्वातंत्र्य सेनानी और आज़ाद हिन्द फौज के निर्माता नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जन्मशती थी। उन्हीं तेजस्वी सुभाषचन्द्र बोस के बचपन का एक प्रसंग है। बालक सुभाष एक दिन घर से गए तो तीन-चार दिन तक उनकी कोई खबर नहीं मिली, वह इन दिनों घर से लापता हो गए। बालक सुभाष की माता प्रभावती जी का रोते-रोते बुरा हाल हो गया। उन्होंने सुपुत्र सुभाष की खोज में चारों ओर व्यक्तियों को

दौड़ाया, परन्तु बालक की कोई खबर नहीं मिली ।

तीन-चार दिन बाद बालक सुभाष अचानक लौटा और चुपचाप पीछे से जाकर अपनी माता की आँखें मूंद लीं । माता प्रभावती जी ने बेटे का स्पर्श पहचान लिया और बड़े दुःखी स्वर में कहा, ''बेटा, तुम तीन-चार दिन कहाँ रहे ? तुम न तो घर आए और न तुमने अपनी सूचना दी । मैं तो परेशान और चिंतित हो गई, तुम्हारी खोज भी करवाई, परन्तु कुछ पता न लगा ।''

पुत्र सुभाष ने मुस्कराते हुए कहा, ''माँ, मैं क्या करता ? कुछ मजबूर हो गया, पास के गाँव में हैजा फैला हुआ था, उन बीमारों की सेवा में ही लगा रहा । मुझे लगा कि उन्हें तो कोई पानी देने वाला भी नहीं है, माँ मैं फिर क्या करता ? मैं उनकी सेवा-सुश्रूषा में लग गया ।'' माँ ने बच्चे से प्यार किया और उसे आशीष दिया ।

3. संकल्प बचपन का

पिछले दिनों सारे राष्ट्र ने नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की जन्मशती पर 23 जनवरी के दिन उनमें स्मरण कर भारत राष्ट्र के लिए उनके अपूर्व त्याग, बलिदान के लिए अपने श्रद्धासुमन प्रस्तुत किये थे । सुभाषचन्द्र बोस जब बच्चे ही थे कि एक दिन माता प्रभावती जी की गोद में से उतरकर जमीन पर सो गए । जब माँ ने पूछा, ''बेटा पलंग छोड़कर भूमि पर क्यों सो गए ?'' तो बालक सुभाष का उत्तर था, ''माँ, आज गुरु जी कह रहे थे कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि थे, वे भूमि पर ही सोते थे और कठोर जीवन जीते थे । माँ, मैं भी ऋषि बनूँगा, सो कठोर जीवन का अभ्यास कर रहा हूँ ।''

माँ और पुत्र की आवाज़ सुनकर सुभाष के पिता वकील जानकीदास जी भी जाग गये । उन्होंने पुत्र सुभाष से कहा, ''बेटे, केवल जमीन पर सो कर ही तुम ऋषि नहीं बन सकोगे, ऋषि बनने

के लिए तुम्हें ज्ञान का अर्जन करना होगा और सेवा का व्रत-संकल्प भी लेना होगा । अभी तो तुम भूमि से उठकर माँ के पास सो जाओ, जब बड़े हो जाओ तब ये तीनों काम करना ।''

बालक सुभाष ने गुरु जी की ही नहीं, अपने पिताजी की सीख भी गिरह बांध ली । जब आई.सी.एस. की परीक्षा उतीर्ण कर अंग्रेजी सरकार का एक उच्च अधिकारी अफसर बनने की बात सामने आई तब उन्होंने कहा, ''मैं अपने बचपन में ही अपना जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर चुका हूँ, मैं अफसर नहीं बनूँगा, मातृभूमि की सेवा करूँगा और महान् बनूँगा ।'' बचपन का वह निश्चय संकल्प सुभाषचन्द्र बोस ने मृत्यु पर्यन्त निभाया और नेता जी बन गए ।

4. सच्ची सेवा का फल

एक नगर में हैजे का प्रकोप हो गया । लोग बड़ी संख्या में मर रहे थे । नगर के सेवाभावी कुछ युवक टोली बनाकर गरीबों की बस्ती में रोगियों की सेवा में लग गए । कुछ बड़े लोगों ने युवकों का विरोध किया, परन्तु युवकों ने उनके उस विरोध का ख्याल नहीं किया । बस्ती वाले कहते थे कि धनियों के बच्चे हमारा अपमान करने आते हैं । इस पर भी वे सब सेवा में संलग्न रहे ।

बस्ती के सबसे बड़े गुंडे हैदर ने भी उनका विरोध किया । वह कई बार जेल जा चुका था, उस का घर भी इस रोग के हमले से नहीं बचा । उसके बुलाने पर कोई डॉक्टर उसके घर नहीं गया । तब उसने देखा कि वे सेवा की धुन में लगे युवा उसके टूटे-फूटे मकान में घुसकर रोगियों की सेवा में लगे थे । उन्होंने घर की सफाई की । रोगियों के कपड़े बदलवाये और उन्हें दवाई देकर उनकी सेवा की ।

इन बालकों की सेवा से उस परिवार के ही नहीं, बस्ती के लोगों की प्राणरक्षा हुई । इस पर उस नम्बरी गुंडे ने युवकों से क्षमा

मांगी, बोला, ''मैं कितना पापी हूँ , मैंने आपका जी भरकर विरोध किया, पर आपने मुझे जिन्दगी दी ।''

सेवादल के मुखिया ने कहा, ''आप इतने परेशान क्यों होते हैं? बस्ती के लोगों का दुःख हमसे नहीं देखा गया, हमने अपना कर्त्तव्य निभाया । आपकी बस्ती और आपका घर गंदा था, तभी आपकी बस्ती को यह तकलीफ उठानी पड़ी ।''

हैदर बोला, ''नहीं साब, मेरा मन, मेरा घर और बस्ती सब गंदी थी । आपकी सेवा से सबका मैल-कूड़ा चला गया । आपका यह उपकार हम नहीं भूलेंगे ।''

युवकों की सेवाव्रती टोली के मुखिया थे—युवा सुभाषचन्द्र बोस, जो संभवतः बाद में अपनी सेवा और बलिदान की भावना से नेता जी पुकारे गए

5. सच्ची माँ की पूजा

1921-22 ई० के वर्षों में बंगाल की नदियों में भयंकर बाढ़ आई । बंगाल के युवा नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस बाढ़ पीड़ितों की करुण गाथा से प्रभावित हो उठे । वह बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए प्रस्थान करने वाले ही थे कि उनके पिता और उस समय के मुख्य वकील श्री जानकीनाथ बोस ने उन्हें बुलाकर कहा, ''बेटा, सुनो, अपने ग्राम कोटलिया में माता दुर्गा की पूजा होने वाली है, उसमें तुम्हारा रहना अनिवार्य है । माँ की इस पूजा को छोड़कर तुम्हारा जाना उचित नहीं है ।''

जनसेवी युवक सुभाष ने हाथ जोड़कर पिता जी से कहा, ''पिता जी, मुझे क्षमा करेंगे । आप सब बुजुर्ग और परिवार वाले गाँव जाकर माता दुर्गा की पूजा करें, परन्तु मुझे न रोकें, मैं भयंकार बाढ़ से दीन-दुःखी सच्ची माँ की पूजा करना चाहता हूँ । मुझे आशीर्वाद दें कि मैं इस सच्ची माँ की पूजा में अपना पूरा योगदान दे सकूँ ।''

13. सरदार पटेल

1. कांग्रेस कार्यकारिणी सभा

पाकिस्तान के मामले को लेकर गाँधी, जवाहर, पटेल तथा अन्य साथियों में थोड़ा-थोड़ा मतभेद था। गाँधी सामान्य रूप से पाकिस्तान के विरोध में थे। सरदार पटेल यदि पाकिस्तान बनाने की अनुमति देने का मन बनाते हैं तो वे सम्पूर्ण स्थानांतरण के हिमायती थे।

पाकिस्तान को लेकर अनेक राय बन रही थी। शिमला सम्मेलन के लिए सरदार पटेल सहित सभी राजनीतिक बंदी छोड़ दिए गए।

कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक दिनांक 21-6-1945—एक समशीतोष्ण दिन।

''पाकिस्तान नहीं बनना चाहिये।''

''जिन्ना इस पर अड़े हैं।''

''जिन्ना को पूरे देश का प्रधानमंत्री बना दें तो उनकी हठ समाप्त हो जाएगी।''

''लेकिन दोनों दलों की समस्या बनी रहेगी।''

''मैं जिन्ना को प्रधानमंत्री नहीं मानूंगा।'' जवाहर ने गुस्से में कहा।

''अपने अलावा किसी और को मानोगे।'' पटेल मुस्कराए।

''इस वक्त मजाक मत करो भाई।''

''अच्छा न सही। बराबर का प्रतिनिधित्व देना है?''

पटेल को इस बात की गंध लग गई थी कि शिमला की बातचीत में अल्पसंख्यक होने के बावजूद मुसलमानों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।

मुसलमान मुस्लिम लीग से बाहर के होंगे ।

''नहीं, केवल मुस्लिम लीग के ।''

''और प्रगतिशील कहाँ जाएंगे ?''

''पटेल के रुख के अनुसार बाहर वालों का होना जरूरी है ।''

''उनसे पूछो ।''

पटेल से पूछा गया तो उन्होंने बात राजेन्द्र बाबू पर टाल दी ।

''आप क्यों नहीं कुछ कहते ?'' आसिफ अली ने पटेल से पूछा ।

''कोई नहीं मानेगा, आप भी नहीं ।''

''एकता में बहुत शक्ति है ।''

''यह सारी झूठी एकता है ।''

''और कम्यूनिस्ट क्या करेंगे ?''

''कइयों ने काँग्रेस से इस्तीफा दे दिया है ।''

''कुछ पाकिस्तान का समर्थन कर रहे हैं ।''

''उन्हें खुद ही नहीं मालूम कि क्या करना चाहिये ?''

''कैसे मालूम हो सकता है ? उनका अपना कोई जमीर हो तब न ?''

संवाद वाद-विवाद और घटनाचक्र में तेजी से परिवर्तन के कारण कुछ बातों में सरदार पटेल की अद्वितीयता समाप्त नहीं होती थी । संप्रदायविषयक विचारों में भेद होने के कारण भी उन्हें बहुत-सी बातों को सुलझाने में और लोगों से अधिक सशक्त माना जाता था ।

कलकत्ता की कार्य-समिति की बैठक में कम्यूनिस्टों को कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया ।

''हमारा आंदोलन अहिंसक है ।''

''तो क्या हुआ ? दोनों में मेल कैसे बैठेगा ।''

''उद्देश्य तो एक ही है और वे भी भारतीय हैं ।''

''किन्तु उनके युद्ध का रास्ता ।''

''हमने कभी स्वीकारा नहीं । लेकिन क्या तुम समझते हो कि आज़ाद हिन्द फौज की स्थापना और उसकी मौजूदगी से अंग्रेज़ सरकार भयभीत नहीं है ? पिछले बीस वर्षों के घटनाचक्र को देखो... संघर्ष, युद्ध, हिंसा, अहिंसा सब मिलजुल कर ही अंग्रेज़ी राज्य के वितान को खोखला कर रहे हैं। हाँ, सत्याग्रह सबसे अधिक प्रभावशाली है ।

आज़ाद हिन्द फौज की चर्चा के साथ युद्ध में मारे गए सैनिकों का पता लगाने के लिए एक समिति बनी और पटेल उसके अध्यक्ष । इतनी महत्वपूर्ण समिति के अध्यक्ष के रूप में पटेल ने बहुत मुस्तैदी से काम किया ।

2. सरदार पटेल गृहमंत्री के रूप में

15-8-1947 ई० को स्वाधीनता के उपलक्ष्य में अवकाश घोषित किया गया । 8 बजे गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंट बेटन, जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल आदि ने स्वतंत्र भारत में अपने-अपने पदों की शपथ ली ।

1946 ई० में 15 में से 12 प्रांतीय कांग्रेस समितियों ने सरदार पटेल को प्रधानमंत्री बनाना चाहा था । परन्तु गांधी जी के आग्रह पर नेहरू प्रधानमंत्री बने थे । अतः अब भी वही हुआ । नेहरू स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधान मंत्री बने । सरदार पटेल गृहमंत्री तथा उप-प्रधानमंत्री बनाए गए ।

3. महात्मा गाँधी का अनशन

प्रातःकाल का नाश्ता अभी हुआ भी नहीं था कि गांधी जी के अनशन की सूचना मिली ।

''अपनों के विरोध में अनशन ।''

''समझ में नहीं आ रहा है ।''

''बापू चाहते क्या हैं ?''

''पाकिस्तान को रुपया दे दिया जाए ।''

''आक्रमणकारियों को रुपया ?''

''बहुत अधिक मानवतावादी दृष्टि है उनकी ।''

''अब राज चलाना है । मानवतावाद से काम नहीं चलेगा ।''

पटेल को हँसी आ गई ।

''इसमें हँसने जैसी क्या बात है ?''

''क्योंकि मानवतावाद और राज चलाने में कोई विरोध नहीं है ।''

''लेकिन आप इसमें क्या कदम उठाएंगें ।''

''पहले तो 55 करोड़ रुपये देने की व्यवस्था करो ताकि बापू का अनशन समाप्त हो ।''

''हाँ, अब यही करना पड़ेगा ।''

पटेल की इच्छा नहीं थी, फिर भी....वे मान गए । किन्तु उन्हें सबसे बड़ा कष्ट अपने और जवाहर के बीच बढ़ते मतभेदों से हो रहा था ।

4. हैदराबाद रियासत का विलय

सरदार पटेल ने सैनिक कार्यवाही का दिन भी निश्चित् कर दिया । 13.12.1948 ई० को जनरल ब्लूशर भारत का सेनाध्यक्ष था । वह 13 के अंक को अशुभ समझता था । उसने कहा–

''यह कार्य 14 दिसंबर को हो ।'' उत्तर मिला ।

''गुजरात में 13 का अंक शुभ माना जाता है ।''

''मैं ही नहीं और लोग भी मानते हैं कि यह अशुभ है ।''

''तो इसमें समस्या क्या। आप 12 को ही चढ़ाई कर दीजिए ।''

हैदराबाद पर दोनों ओर से आक्रमण किया गया । मुख्य सेना ने शोलापुर-हैदराबाद मार्ग से तथा सहायक सेना ने बेजावाद-हैदराबाद मार्ग से प्रस्थान किया ।

मेजर जनरल जे.एन. चौधरी के नेतृत्व में युद्ध में उत्तरी सेना का सामना करते हुए 800 रजाकार मारे गए । उनकी डींगे व्यर्थ सिद्ध हुई । दो दिन के युद्ध के बाद सब सामान्य हो गया । भारतीय सेना आगे बढ़ती गई और 17-12-1948 ई० को हैदराबाद के सेनापति एल.एद. रूस ने जनरल चौधरी के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया । 18 दिसम्बर को जनरल जे. एन. चौधरी ने हैदराबाद में प्रवेश किया। लायक अली तथा हैदराबाद के सभी मंत्री अपने-अपने घरों में हिरासत में ले लिए गए। जनरल चौधरी हैदराबाद के सैनिक गवर्नर नियुक्त कर दिये गए ।

19 दिसम्बर को रजाकारों का नेता कासिम रिजवी बंदी बना लिया गया । निजाम ने हैदराबाद का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने के लिए एक बार फिर प्रार्थनापत्र दिया था । उसने तार भेज कर वापस ले लिया ।

5. कश्मीर रियासत का विलय

सरदार पटेल ने तो यह भी कहा था कि–''कश्मीर का मामला उन्हें सौंप दिया जाए, तो वे केवल पंद्रह दिनों से इस समस्या को सुलझा देंगे ।''

वे तो शुरू से ही जम्मू-कश्मीर के लिए विशेष संविधान के विरोधी थे । जब कश्मीर-नरेश हरिसिंह 26-10-1947 ई० को

विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए थे तो कश्मीर का अन्य राज्यों की भाँति भारत में विलय होना क्यों अजब लगा? यह बात तब भी घातक थी, और उसके बाद सालों साल तक भी ।

पटेल ने तो बड़ा न्यायपूर्ण निर्णय दिया, जो बड़ा व्यावहारिक भी था कि ''पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को कश्मीर में बसा दिया जाए ।'' लेकिन जवाहरलाल नेहरू के कारण यह हल भी काम न आया और हर बढ़ते साल के साथ कश्मीर की समस्या भी बड़ी होती चली गई ।

14. लाल बहादुर शास्त्री

1. हरिजन प्रेमी शास्त्री जी

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी थे । महात्मा गांधी का 'हरिजन प्रेम' सर्वविदित था । एक बार कांग्रेस की एक सभा में गांधी जी ने सभी सदस्यों से एक-एक हरिजन को अपनाकर उसकी सहायता करने की बात कही ।

जब शास्त्री जी अपने घर आए, तो उन्होंने ललिता जी को गांधीजी की बात बताई । ललिता जी के भाई श्री चन्द्रिका प्रसाद मिर्जापुर में रहते थे । वे एक हरिजन बालक रामस्वरूप को आगे बढ़ाने के लिए मिर्जापुर में रहते थे । वे एक हरिजन बालक रामस्वरूप को आगे बढ़ाने के लिए मिर्जापुर ले आऐ थे । रामस्वरूप गणित में होशियार थे । श्री चन्द्रिका प्रसाद के निर्देशन में उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा मिर्जापुर में ही पुरी की । ललिता जी ने शास्त्री जी से रामस्वरूप को अपनाने का सुझाव दिया । जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया ।

अब रामस्वरूप लखनऊ आ गए और शास्त्री जी के घर पर वे बिना किसी दुराव-छिपाव के रहते थे और एक परिवारी जन के कर्त्तव्य का पालन करते थे। अब वे स्नातक हो गए थे, तो शास्त्री की इच्छा उन्हें राजनीति में उतारने की हुई। शास्त्री जी के आशीर्वाद से वे विधायक निर्वाचित हुए और कालान्तर में तीन बार सांसद भी चुने गये।

शास्त्री जी अपने परिवारी सदस्यों के सो जाने पर उनके कमरों में जाकर यह देखते थे कि वे आराम से सो रहे हैं या नहीं? वे रामस्वरूप के कमरे में भी जाते और यदि उनके सिरहाने तकिया नहीं होता था, तो वे अपना तकिया उनके सिर के नीचे लगाकर स्वयं बिना तकिये के ही सो जाते।

एक बार की बात है ललिता जी ने रामस्वरूप को बाजार से चावल लाने भेजा, जो वे बढ़िया बासमती चावल ले आए। यह देखकर शास्त्री जी ने उनसे सामान्य चावल लाने को कहा, ''रामविलास! यह आम आदमी के खाने का चावल नहीं है। जब सामान्यजन बासमती चावल नहीं खा सकता, तो हम भी इसे खाना पाप समझते हैं। इस प्रकार लाल बहादुर शास्त्री जी ने हरिजनों को प्रोत्साहन देकर उनका जीवन-मार्ग प्रशस्त किया और स्वयं एक आम आदमी का जीवन जिया।

2. आज्ञाकारी पुत्र हरिकृष्ण शास्त्री

श्री लाल बहादुर शास्त्री के चार बेटे थे—श्री हरिकृष्ण शास्त्री, श्री अनिल शास्त्री, श्री सुनील शास्त्री एवं श्री अशोक शास्त्री। उन दिनों इंजीनियरिंग और मैडिकल की डिग्रियों का बड़ा 'क्रेज' व महत्त्व था। शास्त्री जी ने अपने सबसे बड़े बेटे हरिकृष्ण शास्त्री को 'ऑटोमोबाइल इंजीनियरिंग' की डिग्री हासिल करने लन्दन भेजा। उस समय 'ग्रेट ब्रिटेन' में भारतीय उच्चायुक्त पं. जवाहर लाल

नेहरू की बहन श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित थीं और श्री हरिकृष्ण शास्त्री की लन्दन में संरक्षिका भी ।

'कोर्स' समाप्त होने पर श्री लाल बहादुर ने अपने सुपुत्र को भारत वापस बुला लिया; क्योंकि श्री शास्त्री जी को विदेश की जीवन-शैली नापसन्द थी ।

एक दिन हरिकृष्ण शास्त्री अपने पिता के पास आए और गर्वपूर्वक उन्हें एक भारतीय औद्योगिक घराने द्वारा प्रेषित नियुक्ति-पत्र दिखाया । इस पत्र में उन्हें एक उच्च पद और अच्छी तनख़्वाह देना प्रस्तावित था । हरिकृष्ण जी इसे अपनी योग्यता मान रहे थे । जबकि श्री लाल बहादुर शास्त्री ने यह कहते हुए पांसा पलट दिया, ''बेटे ! इस औद्योगिक घराने ने यह प्रस्ताव तुम्हारी योग्यता को देखकर नहीं दिया है, वरन् यह नियुक्ति-पत्र उन्होंने देश के प्रधानमंत्री के बेटे को दिया है ।'' शास्त्री जी ने अपने बेटे से कहा कि तुम्हें यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह तो पिछले दरवाजे से रिश्वत देने वाली बात हो गई ।

श्री हरिकृष्ण शास्त्री ने अपने पिता की आँखों के सामने ही वह नियुक्ति पत्र फाड़ दिया । यह देखकर शास्त्री जी का सीना फूलकर दुगुना हो गया क्योंकि एक आज्ञाकारी बेटे ने अपना धर्म निभाने के साथ-साथ उनके वचन की लाज भी रखी थी । धन्य है शास्त्री जी और उनके आज्ञाकारी पुत्र हरिकृष्ण जी ।

3. राष्ट्र के 40 करोड़ परिवारी जन

श्री लाल बहादुर शास्त्री को सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री चुना जा चुका था, अतः वे पूरे राष्ट्र को एक परिवार मानने लगे थे । एक दिन जब वे दोपहर का खाना खाने के लिए अपने बंगले पर आए,

तो परिवार के सभी सदस्य बिना बोले चुपचाप खाना खाने लगे, तो शास्त्री जी के लिए यह बात असह्य हो उठी। उन्होंने उन सभी की चुप्पी का कारण जानना चाहा। तो वे तपाक से बोले, ''बाबूजी! आजकल आप हमें बहुत कम समय देते हैं।''

शास्त्री जी ने शान्त होकर कहा, ''प्रधानमंत्री बनने से पहले मेरा घर ही मेरा परिवार था। अब समूचे राष्ट्र के 40 करोड़ लोग मेरे परिवारी जन हैं। यदि अनुपात देखा जाए, तो तुम्हें मैं देश के लोगों से अधिक समय देता हूँ।'' सभी परिवारीजन को शास्त्री जी का तर्क अच्छा लगा और वे खाना खाते समय खुलकर बातचीत करने लगे।

4. कूलर नहीं होगा, तो क्या करेंगे!

भारतीय रेलवे में अपनी माननीय रेल मन्त्री के लिए सदैव 'विशेष सैलून' की व्यवस्था यात्रा करते समय की जाती है, लेकिन श्री लाल बहादुर शास्त्री ने रेलमंत्री रहते हुए, कभी भी अपने लिए यह छूट नहीं ली। वे सदैव साधारण प्रथम श्रेणी डिब्बे में यात्रा करते रहे।

एक बार वे रेलमंत्री की हैसियत से दिल्ली से बम्बई जा रहे थे। भीषण गर्मी पड़ रही थी। अपने प्रथम श्रेणी के डिब्बे में प्रवेश करने पर उन्हें रेलवे स्टेशन से अधिक ठण्डक महसूस हुई। जब उन्होंने अपने निजी सचिव को बुलाया, तो उसने 'कूलर' को अपने डिब्बे से तुरन्त हटाने का निर्देश दिया। गाड़ी रवाना ही होने वाली थी। अतः 'कूलर' अगले स्टेशन पर हटा दिया गया। उन्होंने अपने निजी सचिव से कहा कि भविष्य में उनके संज्ञान में लाए बिना उनके डिब्बे में कोई अतिरिक्त सुविधा न लगाई जाए।

इसके विपरीत उनके लिए विशेष प्रथम श्रेणी के डिब्बे की व्यवस्था की जाती थी, जब वे अपनी धर्मपत्नी ललिता जी के साथ यात्रा कर रहे होते थे। इस विशेष डिब्बे के गुसलखाने में एक अतिरिक्त नल लगा रहता था; क्योंकि ललिता जी स्नान करने के उपरान्त पूजा-पाठ कर ही कुछ खाती-पीती थीं। वे रेल के डिब्बे में स्नान नहीं करती थीं। उनके स्नान करने के लिए बाहर से बाल्टियों में पानी लाया जाता था। इसका विकल्प यह तलाशा गया कि उनके गुसलखाने के एक कोने में स्ट्रल (टट्टी करने) के कमोड से एक अतिरिक्त नल लगाया गया, जिससे वे निर्विहित स्नान कर सकें। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने लिए शास्त्री जी साधारण सुविधायुक्त डिब्बे में सफर करते, लेकिन अपनी धर्मपत्नी ललिता जी के लिए वे सभी सुविधाएं उपलब्ध कराते थे। अपनी पत्नी के प्रति प्रेम के कारण वे ऐसा करते थे।

15. संत राबिया

1. तीन नसीहतें

सलेह आमरी एक सुप्रसिद्ध संत थे। वे एक बार राबिया के पास आए। राबिया से पूछा—तुमने यह पवित्र दर्जा कैसे पाया? मुझे राज बताओगी?'' संत राबिया बोली—''यह पाया अपनी सारी इच्छाओं को खुदा की चाह में डुबोकर और खुदा को पाया इबादत से।'' संत सलेह बोले—''क्या मुझे भी यह मिल सकता है?'' राबिया बोली—''बेशक! मगर कुछ कमियां तुम्हें दूर करनी होंगी।'' राबिया अंदर गई और तीन चीजें लाई—मोमबत्ती, सूई व बाल। बोली—''बताओ! इनसे क्या नसीहत मिलती है?''

वे बोले—''आप ही बताएं।'' राबिया बोली—''मोमबत्ती

यह शिक्षण देती है कि स्वयं जलो और दूसरों को प्रकाश दो। सूई की विशेषता है कि वह स्वयं नंगी रहती है, लेकिन दूसरों के कपड़े सीकर तन को ढकती है। बाल के भाँति लचीले, विनम्र बनने का एक लोकसेवी को प्रयास करना चाहिये। तुम इन तीनों के समान बन जाओ और दर्जा वही पा लोगे, जो मेरा है।'' उपदेश सुनकर सलेह धन्य हो गए। कालांतर में वे भी उच्च स्तरीय संत के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

2. जिसने अहंकार छोड़ा वही है संत

संतों की परम्परा में संत राबिया का एक महत्त्वपूर्ण स्थान इसलिये है कि उन्हें अपनी सिद्धियों पर कभी घमंड नहीं रहा। वह अल्हड़ एवं फक्कड़ जीवन व्यतीत करते हुए लोगों को अध्यात्म की गहराई में ले जाती थीं। एक बार राबिया अपनी कुटिया में कुछ अन्य संतों के साथ अध्यात्म चर्चा में व्यस्त थीं।

चर्चा का विषय था अध्यात्म और भक्ति में संगीत की भूमिका। वहाँ बैठे एक संत का कहना था कि अध्यात्म के लिए जरूरी नहीं कि संगीत का ही सहारा लिया जाए जबकि राबिया का मानना था कि ऊपर वाले को याद करने के लिए यह जरूरी न सही लेकिन एक बेहतर तरीका है। संगीत हमें एकाग्रता देता है जो ईश्वर की भक्ति के लिए आवश्यक तत्त्व है।

अभी बहस चल ही रही थी कि वहाँ संत हसन बसरी आए और बोले, ''आप लोग इस बंद जगह पर क्यों बैठे हैं, चलिए हम तालाब के किनारे बैठकर इस बात पर चर्चा करते हैं।'' दरअसल हसन को पानी पर चलने की सिद्धि प्राप्त हुई थी और इसके प्रदर्शन के लिए वह उतावले थे। राबिया को समझते देर नहीं लगी कि संत हसन बसरी असल में क्या चाहते हैं। उन्हें खुद हवा में उड़ने की सिद्धि प्राप्त थी इसलिए हँसते हुए कहा, ''हम हवा में उड़ते-उड़ते

बातें करें तो कैसा रहेगा?''

हसन को समझ में आ गया था कि राबिया उन पर कटाक्ष कर रही हैं। राबिया ने कहा, ''भाई तुम जो कर सकते हो वह तो एक मछली भी कर सकती है और जो मैं करती हूँ वह एक मक्खी भी कर सकती है मगर उस चमत्कार से भी बड़ी एक चीज़ है जिसे हमें विनम्रता से खोजना चाहिए। हमें अपनी ताकत का प्रयोग व्यापक जन समुदाय के हित में करना चाहिए।'' राबिया की इस सीख ने संत हसन बसरी के अहंकार को तो दूर किया ही, साथ ही अध्यात्म के मार्ग पर चलने वाले वहाँ उपस्थित संतों को भी प्रेरणा दी।

3. धिक्कार नहीं, प्यार

सूफी संत राबिया धर्मग्रंथ पढ़ रही थीं। उसी समय एक फ़कीर वहाँ आया और उनसे दुर्वचन कहने लगा। राबिया ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह ग्रंथ पढ़ती रही। उत्सुकतावश फ़कीर राबिया के पास यह देखने पहुँचा कि आखिर वह क्या पढ़ रही है जो इस कदर डूबी हैं। जब उसने ग्रंथ पर नजर डाली तो एक वाक्य के कुछ शब्दों को काटा हुआ पाया। उसने चिल्लाकर राबिया से पूछा, ''ये शब्द किसने काटे हैं?'' राबिया ने शांत स्वर में जवाब दिया, ''मैंने''। ''क्या किसी मनुष्य को धर्मग्रंथ में लिखा अंश काटने का अधिकार है।'' ''हाँ, जैसे-जैसे धर्मग्रंथ की नसीहतों के जरिए हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है वैसे-वैसे हमारी बुद्धि परिपक्व होती जाती है।''

राबिया ने जवाब दिया, ''अगर हमें कोई अंश गलत प्रतीत हो तो उसमें आवश्यक सुधार करने में कोई हर्ज नहीं।'' ''तुमने किस अंश को गलत माना है?'' उसने आगे पूछा। राबिया ने बताया, ''इसमें लिखा है कि शैतान का धिक्कार करना चाहिये।

यह वाक्य मुझे ठीक नहीं लगा और मैंने उसे काट कर लिख दिया—शैतान से प्यार करना चाहिये।'' शैतान का धिक्कार करने में क्या बुराई है। फ़कीर के इस सवाल पर राबिया ने समझाते हुए कहा, ''यदि किसी व्यक्ति का धिक्कार करना हो तो उसके प्रति हमारे दिल में क्रोध होना चाहिये। मैं अपने दिल में क्रोध, नफरत, जैसे दुर्गुणों को भटकने नहीं देती क्योंकि मेरे दिल में ख़ुदा का वास है।''

राबिया ने आगे कहा, ''मेरे दिल में जो ख़ुदा छिपा हुआ है वह मुझे दूसरों से प्रेम करने का आदेश देता है। वह जानता है कि शैतान को क्रोध से नहीं बल्कि प्यार से वश में किया जा सकता है इसलिए मैंने शैतान का धिक्कार करने संबंधी वाक्य काटकर उसके स्थान पर उससे प्यार करने की बात लिख डाली।'' फ़कीर ने उनसे माफी मांगी और वहाँ से चुपचाप चला गया।

16. फुटकर

1. क्रोध पर प्रेम की विजय

विश्वामित्र वास्तव में बहुत क्रोधी थे। क्रोध में उन्होंने सोचा—''मैं वसिष्ठ को ही मार डालूँगा। फिर मुझे ब्रह्मर्षि की जगह राजर्षि कहने वाला कोई रहेगा नहीं।' ऐसा सोचकर, एक छुरा लेकर वह उस वृक्ष पर जा बैठे, जिसके नीचे बैठकर महर्षि वसिष्ठ अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। शिष्य आए, वृक्ष के नीचे बैठ गए। वसिष्ठ आए, अपने आसन पर विराजमान हो गए। शाम हो गई। पूर्व के आकाश में पूर्णमासी का चाँद निकल आया। विश्वामित्र सोच रहे थे, अभी सब विद्यार्थी चले जायेंगे। अभी मैं नीचे उतरूँगा,

एक ही वार में अपने शत्रु का अन्त कर दूँगा। तभी एक विद्यार्थी ने नए निकलते हुए चाँद की ओर देखकर कहा—''वह कितना मधुर चाँद है! उसके अन्दर कितनी सुन्दरता है।''

वसिष्ठ ने चाँद की ओर देखा, बोले—''यदि तुम ऋषि विश्वामित्र को देखो तो इस चाँद को भूल जाओ। यह चाँद सुन्दर अवश्य है, परन्तु ऋषि विश्वामित्र इससे भी अधिक सुन्दर हैं। यदि उनके अन्दर क्रोध का कलंक न हो, तो वे सूर्य की भाँति चमक उठें।'' विद्यार्थी ने कहा—''परन्तु महाराज! वे तो आपके शत्रु हैं। स्थान-स्थान पर आपकी निन्दा करते हैं।''

वसिष्ठ बोले—''मैं जानता हूँ, परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि वे मुझसे अधिक विद्वान हैं। मुझसे अधिक तप उन्होंने किया है। वे मुझसे अधिक महान् हैं। मेरा माथा उनके चरणों में झुकता है।'' वृक्ष पर बैठे विश्वामित्र इस बात को सुनकर चौंक पड़े। वह बैठे थे इसलिए कि वसिष्ठ को मार डालें और वसिष्ठ थे कि उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे। एकदम वे नीचे कूद पड़े। छुरे को एक ओर फेंक दिया। वसिष्ठ के चरणों में गिरकर बोले—''मुझे क्षमा कर दो।''

वसिष्ठ प्यार से उन्हें उठाकर बोले—''उठो ब्रह्मषि!'' विश्वामित्र ने आश्चर्य से कहा—''ब्रह्मर्षि? आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहा? परन्तु आप तो ये मानते नहीं हैं?' वसिष्ठ बोले—''आज से तुम ब्रह्मर्षि हुए महापुरुष। तुम्हारे अन्दर जो चाण्डाल था, वह निकल गया।'' यह क्रोध बहुत बुरी बला है। सवा करोड़ नहीं, सवा अरब गायत्री का जाप कर लें, एक बार का क्रोध इसके सारे फल को नष्ट कर देता है।

2. सत्संग का प्रभाव

पंडित लेखराम जी ग्राम-ग्राम में घूमकर प्रचार कर रहे थे।

एक ग्राम में पहुँचे तो उस प्रदेश का डाकू मुगला भी उनके व्याख्यान को सुनने के लिए आ गया। इसके कई साथी भी दूसरे लोगों के साथ बैठ गए। ग्राम के लोगों ने जब मुगला को देखा और पहचाना तो उनके पैरों के नीचे की जमीन निकल गई। एक-एक करके वे उठने लगे। पण्डित लेखराम जी व्याख्यान दे रहे थे। लोग उठकर जा रहे थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह क्या हो रहा है। धीरे-धीरे सभी लोग चले गए। केवल मुगला और उसके साथी रह गये। पण्डित लेखराम जी भाषण देते रहे। वे कर्म के सम्बन्ध में बोल रहे थे और बता रहे थे–

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। –महाभारत

''जो भी शुभ या अशुभ कर्म तुमने किये हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। कर्म फल से बचने का कोई मार्ग नहीं। दूसरे लोग न देखें, पुलिस न देखे, सरकार न देखे, परन्तु याद रक्खो कि एक आँख ऐसी है, जो तुम्हें देख रही है। तुम्हारे हृदय के भीतर जो कुछ होता है, उसे भी वह जानती है। उससे बचने का कोई मार्ग नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्म का फल वह देती है।'' व्याख्यान समाप्त हुआ तो मुगला ने पण्डित लेखराम जी के पास जाकर कहा–''आप कौन हैं?'' पण्डित जी ने कहा–''मैं लेखराम हूँ'' डाकू ने कहा–''मैं एकान्त में आपसे कुछ बातें पूछना चाहता हूँ। क्या आपसे मिल सकता हूँ?''

लेखराम जी ने कहा–''अवश्य मिल सकते हो। मैं आर्यसमाज में ठहरा हुआ हूँ, वहीं आ जाना।'' रात्रि के समय मुगला और उसके साथी आर्य समाज में जा पहुँचे। ग्रामवालों ने समझा कि आपत्ति आ गई है; ये लोग बेचारे पण्डित लेखराम जी को लूटने आए हैं। परन्तु मुगला ने हाथ जोड़कर पण्डितजी से कहा–''आप तो कह रहे थे कि प्रत्येक कर्म फल अवश्य भोगना

पड़ता है, तो क्या यह ठीक है?'' पण्डितजी ने कहा–''शत प्रतिशत ठीक है।'' मुगला बोला – ''क्या प्रत्येक कर्म फल भोगना पड़ेगा। क्या बचने का कोई उपाय नहीं?'' पण्डित जी ने कहा–''कोई नहीं।''

मुगला ने कहा–''तो फिर क्या बनेगा? मैं तो कई वर्ष से डाके मारता हूँ।'' पण्डित जी ने कहा–''आज से छोड़ दो। कल आर्यसमाज में आओ, मैं तुम्हें यज्ञोपवीत दूँगा। इसके पश्चात् धर्म के मार्ग पर चलो।'' मुगला और उसके साथी दूसरे दिन आर्यसमाज में पहुँच गए। सबका जीवन बदल गया। यह होता है सत्संग का प्रभाव। जैसे तुलसीदास लिखते हैं–

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की कटै कोटि अपराध।।

3. कर्म कर फल की कामना नहीं

महात्मा हंसराज जी ने अपना जीवन दान दे दिया। बड़े भाई 50 रुपये मासिक देते थे, इस पर निर्वाह करते थे वे। एक बार भाई अप्रसन्न हो गए। उन्होंने सहायता के रुपये देना बन्द कर दिया। महात्मा जी के पास कोई पूँजी तो थी ही नहीं। घर में कुछ भी नहीं था। उनके पास केवल छः आने थे। घर में खाने को कुछ भी नहीं था। तीन दिन इसी प्रकार बीत गए। पत्रों में उन दिनों महात्माओं के विरुद्ध लेख छप रहे थे। घबराकर उन्होंने सोचा–'मैं यह कौन-से मार्ग पर चल पड़ा हूँ?' इस विचार से उत्पन्न होते ही वे घबराहट के साथ अपने छोटे-से कमरे में चलने लगे–इधर-से-उधर, उधर-से-इधर। चैन नहीं। मछली जैसे पानी के बिना तड़पती है, ऐसे उनका दिल तड़प रहा था। तभी वे अपने कमरे में रखी उस अलमारी के पास पहुँच गए, जिसमें गीता रखी थी। गीता को उन्होंने निकाला। उसका एक पृष्ठ खोला, वहाँ लिखा था–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतु भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। (गीता 2.47)

भावार्थ—तेरा कर्म करने का ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में आसक्ति न हो।

महात्मा जी ने मुझे बताया कि इन शब्दों को पढ़ते ही उनकी घबराहट दूर हो गई। ऐसा ज्ञान हुआ, जैसे सच्चा और सीधा रास्ता मिल गया है। ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई सामने खड़ा हुआ कहता है—'अरे घबरा क्यों गया? तेरा काम केवल कर्म करना है, उसके फल की चिन्ता करना नहीं। फल को भगवान् पर छोड़ दो, आगे बढ़ो।' उन्होंने बताया कि फिर कभी डगमगाना नहीं पड़ा। फिर कभी बेचैनी नहीं आई। यह है स्वाध्याय का फल।

4. जैसा दृष्टिकोण, वैसा अन्तःकरण

वीरान जंगल में एक सुन्दर मकान था। एक साधु ने उसे देखकर सोचा— 'कितना सुन्दर स्थान है यह! यहाँ बैठकर प्रभु भक्ति करूँगा।' एक चोर ने उसे देखा तो सोचा—'वाह! यह तो सुन्दर स्थान है। चोरी का माल लाकर यहाँ रक्खा करूँगा।' एक दुराचारी ने देखा तो सोचा—'यह तो अत्यन्त एकान्त स्थान है। दुराचार करने के लिए इससे उत्तम स्थान और कहाँ मिलेगा?'' एक जुआरी ने देखकर सोचा—'अपने साथियों को यहाँ लाऊँगा, यहाँ बैठकर हम जुआ खेलेंगे।'

अलग-अलग दृष्टिकोण होने के कारण एक ही मकान को प्रत्येक व्यक्ति ने अलग-अलग रूप में देखा। जैसा दृष्टिकोण बनाओगे, वैसा अन्तःकरण अवश्य बनेगा। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा अन्तःकरण अच्छा हो तो दृष्टिकोण अच्छा बनाओ। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में—

सब जब ईश्वर-रूप है, भला बुरा नहिं कोय।
जैसी जाकी भावना, तैसा ही फल होय।।

5. प्रभु भजन की तन्मयता

अकबर बादशाह दिन-भर यात्रा करते हुए बाहर दूर निकल गये। चलते-चलते नमाज का समय हो गया। तब मार्ग में ही एक और नमाज का वस्त्र बिछाकर दो-जानु हो गए। उधर एक नवयुवती अपने पतिदेव को खोजती आ रही थी। उसके पतिदेव प्रातः के गए घर नहीं लौटे थे। यह सच्ची देवी पति-वियोग में उन्मत इधर-उधर दृष्टि डालती जा रही थी—अपने विचार में निमग्न। उसने नमाज का कपड़ा देखा नहीं और उसी के ऊपर पग रखती आगे बढ़ती गई। अकबर को उसकी गुस्ताखी पर क्रोध तो आया, परन्तु चुप्पी साधे रखी। थोड़ी ही देर में जब वह युवती अपने पतिदेव के साथ लौटी तो अकबर कहने लगा—''तुझे दिखा नहीं मैं नमाज में, प्रभु-भक्ति में था? तुझे जाए-नमाज भी नजर नहीं पड़ा? पग रखती चली गई?'' युवती ने बड़े धैर्य से एक दोहा पढ़ा—

नर-राची सूझी नहीं, तुम कस लख्यो सुजान?
कुरान पढत बौरे भये, नहिं राज्यो रहमान।।

मैं तो अपने पतिदेव की खोज में गुम हो चुकी थी, जिससे मुझे कुछ सूझा नहीं, परन्तु तुम तो प्रभु-भजन में लीन थे, तुमने मुझे कैसे देख लिया? मालूम होता है कि कुरान ही पढ़-पढ़ बौरा गए हो, भगवान् में अभी प्रीति नहीं हुई। अकबर यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गया और बतलाया जाता है कि वह अक्सर लम्बा श्वास लेकर यही दोहा बार-बार दोहराया करता था।

6. स्वर में मिठास का रहस्य

अकबर के दरबार में तानसेन नामक एक गवैया था। कहते हैं, जब वह मल्हार गाता तो वर्षा होने लगती। जब वह दीपक राग गाना आरम्भ करता, तो दीये जल जाते। एक दिन अकबर ने कहा—''तानसेन! यह सब-कुछ तुमने जिससे सीखा है, उसका गाना हमें भी सुनवाओ।'' तानसेन ने कहा—''बादशाह! मेरे गुरु स्वामी

हरिदास हैं। आपके दरबार में वे नहीं आयेंगे। मेरी तरह उन्हें आपसे कुछ लेना नहीं है। वे जंगल में पत्तों की झोंपड़ी बनाकर रहते हैं। वहीं कहीं मौज आ जाए तो अपना दुतारा लेकर गाने लगते हैं। किसी के लिए वे गाते नहीं।''

अकबर ने कहा—''वह नहीं आ सकते तो चलो हम उनके पास चलें। एक बार उनके दर्शन तो कर लें।'' बादशाह को साथ लेकर तानसेन उस जंगल में गये, जहाँ हरिदास स्वामी रहते थे। देखा—हरिदास कुटिया के बाहर ध्यान में मगन हुए बैठे हैं, चुपचाप शान्त। एक दुतारा उनके पास पड़ा है, परन्तु वह भी बे-आवाज। बादशाह ने धीरे से कहा—''तानसेन, यहाँ आकर भी क्या हम प्यासे जायेंगे? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं कि स्वामी हरिदास जी गाने लगे?'' तानसेन ने कहा—''प्रयत्न करता हूँ शांहशाह! आप चुपचाप खड़े रहिये।''

तानसेन ने अपनी सितार उठाकर उसको बजाना शुरू कर दिया, थोड़ा ठीक बजाया, फिर जान-बूझकर गलत बजाने लगा। हरिदास ने सुना तो झुँझला उठे; बोले—''गलत बजाते हो तानसेन, सुनो!'' और अपना दुतारा उठाकर वह बजाने लगे। उसके साथ-साथ गाने लगे। जंगल के हिरण स्वामी हरिदास के पास आकर खड़े हो गये। वहाँ के पक्षी शान्त हो गये। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे चलती हुई हवा भी ठहर गई है।

बादशाह भी मस्त हो गये। कितनी देर हो गई, यह भी उन्हें पता नहीं लगा। अन्ततः जब हरिदास ने गाना बन्द किया तो बादशाह और तानसेन प्रणाम करके वापस आ गये। रास्ते भर बादशाह बोल नहीं सके। मधुर संगीत की ध्वनि अभी तक उनके कानों में गूंज रही थी, उनकी आत्मा में गूँज रही थी। रात्रि के समय बादशाह ने तानसेन से कहा—''तुम अच्छा गाते हो, भारतवर्ष के

सबसे बड़े गायक हो। फिर भी तुम्हारे गाने में वह रस क्यों नहीं, वह मस्ती क्यों नहीं, जो स्वामी हरिदास के गाने में है?''

तानसेन ने हाथ जोड़कर कहा—''बादशाह मुझमें और हरिदास में बहुत अन्तर है। मैं हूँ एक शाही गवैया और अपने बादशाह के लिए गाता हूँ। स्वामी हरिदास जगत्पति के गायक हैं; वह उसके लिए गाते हैं, जो करोड़ों बादशाहों को उत्पन्न और नष्ट कर देता हैं जितना गुड़ हो उतना ही मीठा होता है। वे बड़े दरबार के गायक है, मैं छोटे दरबार का गायक हूँ।'' अकबर ने सुना, सोचा और चुप हो गया। धीरे-से उसने अपने मन में कहा—''जो भगवान् के गुण गाता है, उसकी वाणी में रस होगा ही।''

7. अतिथि-यज्ञ : हमारी संस्कृति का महान् आधार

राजा रन्तिदेव की कहानी है। उन्होंने अतिथि-यज्ञ को इस सीमा तक पहुँचाया कि अतिथि उनसे जो भी माँगते, वही उठा के दे देते। एक बार उनके राज्य में भयानक अकाल पड़ा। महाराज रन्तिदेव के यहाँ कितने ही दुःखी और भूखे मनुष्य आने लगे। महाराज ने अपने अनाज के भण्डार उनके लिए खोल दिये। अपने कोषों के द्वार खोल दिये। धीरे-धीरे सारा कोष समाप्त हो गया, सारा अन्न समाप्त हो गया, कपड़े भी समाप्त हो गये। महाराज रन्तिदेव ने अपने रिक्त महल को देखा तो उनका हृदय रो उठा। इसलिए नहीं कि वे निर्धन हो गए अपितु इसलिए कि यदि अचानक कोई अतिथि आ गया, कोई आवश्यकता वाला आ गया तो उसे क्या देंगे ?

इस विचार के आते ही वे अपनी रानी और छोटे पुत्र को लेकर महल के बाहर चल पड़े। उजड़े हुए उद्यानों और निर्जन क्षेत्रों से भी आगे चले गये—उन वनों में जहाँ जल नहीं था? खाने को भी

नहीं था। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, दस, बीस—इसी प्रकार चालीस दिन व्यतीत हो गये। कभी-कभी सूखे पत्ते खाकर निर्वाह कर लेते। कभी-कभी वे भी न मिलते। शरीर की शक्ति समाप्त हो गई। सूखकर वे तीनों—महाराज, महारानी और राजकुमार हड्डियों का ढाँचा रह गये। ऐसी अवस्था हो गई कि उठकर चलना भी कठिन हो गया। 40वें दिन वे एक सूखे वृक्ष के नीचे बैठे थे। एक सज्जन वहाँ आये। ताज़ा भोजन से पूर्ण एक थाल उनके पास था। उसने तीनों के आगे भोजन परोसा ताजा ठंडा जल भी रख दिया और यह कहकर चला गया—"तुम खाओ, मुझे आगे यात्रा पर जाना है।"

तीनों आचमन करके खाने को बैठै। महाराज रन्तिदेव का काँपता हुआ हाथ भोजन की ओर बढ़ा तो उनका हृदय कांप उठा। एक हूक-सी उठी हृदय से—'हाय! आज क्या किसी अतिथि को भोजन कराये बिना ही हम भोजन करेंगे? आज तक जो कार्य नहीं किया, क्या वह आज करेंगे?' तभी दूर से दो ब्राह्मण आते दृष्टिगोचर हुए। रन्तिदेव के पास आकर उन्होंने कहा—"हमें भूख लगी है क्या आप थोड़ा भोजन दे सकते हैं?"

रन्तिदेव प्रसन्न होकर बोले—"अवश्य!" और अपने सामने रखा हुआ भोजन उन्होंने दोनों ब्राह्मणों को बाँट दिया। इससे अतिथियों की क्षुधा शान्त न हुई तो महारानी का भोजन भी उन्हें दे दिया। पानी भी पिला दिया। दोनों प्रसन्न होकर चले गये। महाराज ने राजकुमार के भोजन को तीन भागों में विभक्त किया। उसे खाने ही लगे कि दो और यात्री आ गये। वे तीनों का भोजन खा गए। केवल थोड़ा-सा जल शेष रह गया। महाराज ने कहा—"चलो, थोड़ा-थोड़ा पानी पीकर ही निर्वाह कर लो।" तभी एक चाण्डाल आया, प्यास से बिलखता हुआ, बोला—प्यासा हूँ, पानी पिला दो।"

महाराज रन्तिदेव ने सारा पानी उसे पिला दिया। कुछ भी उनके पास न रहा। तभी उनके आत्मा के अन्दर से यह ध्वनि आई—''रन्तिदेव! अतिथि-यज्ञ की परीक्षा में तुम सफल हुए। सब कुछ तुम्हें मिल सकता है। बोलो, क्या चाहते हो?''

रन्तिदेव ने काँपते हुए ओठों से कहा—''नहीं चाहिए मुझको स्वर्ग, नहीं चाहिए राज्य और भोग। देना चाहते हो दाता, तो एक यही वर दो कि मैं दुःखी लोगों के हृदय में निवास कर सकूँ। उनके दुःख दूर कर सकूँ, उनका कल्याण कर सकूँ।''

रन्तिदेव बनना सरल नहीं, फिर भी अतिथि-यज्ञ की भावना तो हृदय में उत्पन्न करनी ही चाहिए। अतिथि-यज्ञ हमारी संस्कृति का एक महान् आधार है। इसीलिए इसे आर्य लोगों में जीवन के दैनिक कर्मों का एक अंग बनाया गया है।

8. त्याग में आनन्द

एक साधु किसी नगरी में रहता था और भक्ति के गीत गाता था। लोग उसका सम्मान करते, उसे कितनी ही वस्तुएं देते। साधु ने अपने शिष्य से कहा—बेटा! चलो, किसी दूसरे नगर में चलें। शिष्य ने कहा—''नहीं गुरु महाराज। यहाँ चढ़ावा बहुत चढ़ता है। कुछ पैसे जमा हो जायें, फिर चलेंगे।'' गुरु ने कहा—''पैसे जमा करके क्या करेगा? चल मेरे साथ, पैसे जमा नहीं करने हमें।''

चल पड़े दोनों। शिष्य ने कुछ पैसे जमा कर रक्खे थे, उन्हें अपनी धोती में बाँध रक्खा था। चलते-चलते मार्ग में नदी पड़ गई। एक नौका वहाँ थीं। नौका वाला पार ले जाने के लिए दो आने माँगता था। साधु के पास पैसे नहीं थे। शिष्य देना नहीं चाहता था। दोनों बैठ गये। दोपहर हो गई, संध्या हो गई, रात हो गई, वे बैठे थे। रात को नाविक अपने घर जाने लगा, तो बोला—''बाबा! तुम यहाँ कब तक बैठे रहोगे? यह है जंगल, रात को सिंह इस

किनारे पर पानी पीने आता है । अन्य पशु भी आते हैं, वे तुम्हें मार डालेंगे ।'' शिष्य ने कहा– ''तुम हमें पार ले चलो ।''

नाविक ने कहा–मैं तो दो-दो आने लिये बिना नहीं ले जा सकता ।''

शिष्य को सिंह के विचार से डर लगा । धोती से चार आने निकालकर बोला–''अच्छा, नहीं मानता तो ले ।''

नाविक ने चार आने लिये, उन्हें पार ले गया । दूसरे पार जाकर शिष्य ने कहा–''देखा गुरु जी ! आप तो कहते थे कि पैसा इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं ?''

गुरुजी ने हँसते हुए कहा–''सोचकर देख बेटा ! पैसा एकत्र करने से तुम्हें सुख नहीं मिला । पैसे को देने से मिला । सुख त्याग में है, एकत्र करने में नहीं ।''

9. त्याग का सम्मान

एक व्यक्ति इतना कंजूस था कि अपने-आप पर भी धेला खर्च नहीं करता था । लाखों का स्वामी था; फटे कपड़े पहने रहता । उसमें केवल एक अच्छी बात थी । वह सत्संग में जाता था । वहाँ भी उसे कोई पूछता न था । सबसे अन्त में जूतों के पास बैठ जाता । कथा सुनता रहता । भोग पड़ने का दिन आया, तो सब भेंट चढ़ाने कोई-न-कोई वस्तु लाये । वह कंजूस भी एक मैले-से रुमाल में बाँध के कुछ लाया । सब लोग अपनी लाई वस्तु रखते गये, वह भी आगे बढ़ा । उसने अपना रुमाल खोल दिया । उसमें अशर्फियाँ थीं । पौण्ड और सोना । इन्हें पण्डित जी के समक्ष उँडेलकर वह जाने लगा । पण्डित जी ने कहा–''नहीं-नहीं सेठ जी । वहाँ नहीं, यहाँ मेरे पास बैठो ।''

सेठ जी ने बैठते हुए कहा–''यह तो रुपयों का सम्मान है पण्डित जी, मेरा सम्मान तो नहीं ?''

पण्डित जी ने कहा–''भूलते हो सेठ जी! रुपया तो तुम्हारे पास पहले भी था। यह तुम्हारे रुपये का नहीं, त्याग का सम्मान है।

10. सुख किसे प्राप्त होता है?

एक बार एक शिष्य ने अपने गुरु से प्रश्न किया–''सुख किसे प्राप्त होता है?''

''गुरु ने उत्तर दिया–''जिसका हृदय शान्त है।''

''हृदय किसका शान्त है?''

''जिसका मन चंचल नहीं।''

''मन किसका चंचल नहीं?''

''जिसे किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं।''

''अभिलाषा किसे नहीं है?''

''जिसको किसी वस्तु में आसक्ति नहीं।''

''आसक्ति किसे नहीं?''

गुरुजी ने शांत-स्निग्ध मुद्रा में कहा–''जिसकी बुद्धि में मोह नहीं है।'' जैसे कबीर ने कहा–

चाह मिटी चिन्ता गई, मनुआ बे-परवाह।
जिसको कछू न चाहिये, सो शाहनपति शाह।।

11. आनन्द की खोज

एक कुत्ता कई दिनों से भूखा था। खाना खोजता फिरता था। चलते-चलते वह एक नदी के पास पहुँचा। तट पर एक वृक्ष था। वृक्ष पर पत्ते नहीं थे, केवल शाखाएं थीं। उनमें से एक शाखा पर एक रोटी लटक रही थी। वृक्ष का और रोटी का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था। कुत्ते ने पानी की ओर देखा। समझा–सामने रोटी है। उसमें छलाँग लगी दी। पानी हिला तो रोटी भी जाती प्रतीत हुई। वह और आगे बढ़ा तो रोटी और आगे जाती विदित हुई। इस

प्रकार वह बार-बार आगे बढ़ता, बार-बार रोटी आगे बढ़ जाती। अन्त में, मंझधार में पहुँचा; डूबा और समाप्त हो गया।

अरे मनुष्य! तू भी तो भूखा फिरता है। जन्म-जन्म से आनन्द की प्यास तेरे चित्त में है। इसको खोजता फिरता है। तूने सोचा—जिसके पास धन है, वह सुखी है और मार दी धन के पानी में छलाँग, परन्तु आनन्द तो मिला नहीं, आनन्द की रोटी आगे हो गई। तूने सोचा कि विवाह में सुख है। पकी-पकाई रोटी मिल जाती है, सुख और शांति मिल जाती है। लगा दी छलांग विवाह के जल में, परन्तु आनन्द तो मिला नहीं। आनन्द की रोटी और आगे हो गई। तूने सोचा आनन्द सन्तान में है। तूने लगा दी छलांग। पानी फिर हिल गया। रोटी और आगे हो गई।

इस प्रकार मान-सम्मान में, शासन में, मकान में, सम्पत्ति में कहीं भी आनन्द नहीं। अरे छलांग लगाना चाहते हो तो लगाओ, परन्तु आनन्द की रोटी मिलेगी नहीं। कुत्ते में यदि बुद्धि होती तो वह पानी में छलांग लगाने के स्थान पर निहारता ऊपर की ओर। वृक्ष पर चढ़ने का प्रयत्न करता, रोटी मिल जाती। अरे मनुष्य! आनन्द की रोटी नीचे नहीं, वृक्ष के ऊपरी है। आनन्द की इच्छा है तो ऊपर चढ़ो? नीचे मत गिरो।

12. सच्चा राष्ट्र आस्था से चिरजीवी हो सकता है

चीन की एक कहानी है। वहाँ के महान् दार्शनिक तत्त्वचिंतक कन्फ़्यूशिस से उनके एक शिष्य ने पूछा, ''गुरुजी, एक राष्ट्र या देश के लिए किन-किन चीजों की जरूरत है? राष्ट्र के सच्चे अवलंब क्या हैं?''

कन्फ़्यूशियस का उत्तर था, ''एक राष्ट्र की तीन मुख्य जरूरते होती हैं—पहली सेना, दूसरी अनाज और तीसरे आस्था।''

शिष्यों ने पूछा, ''गुरुवर, यदि इन तीनों में एक न मिले तो

किसे छोड़ा जा सकता है?'' कन्फ़्यूशियस कुछ देर चुप रहे, उसके बाद उन्होंने कहा, ''तब अनाज को छोड़ा जा सकता है, लेकिन आस्था को नहीं। आस्था न रहने से देश नहीं रह सकता। एक सच्चा राष्ट्र अपनी आस्था से ही चिरजीवी हो सकता है, वही उसकी पहचान है।''

13. जन्मभूमि के सामने सोने का स्वर्ग व्यर्थ

श्री राम अपने समय के अत्याचारी रावण का संहार करने के बाद लक्ष्मण सहित लंका का दर्शन करने गए। दोनों को वहाँ की शस्य-श्यामला भूमि, धन्य-धान्य से परिपूर्ण विस्तीर्ण अंचल भा गया। लंका की रमणीयता, वैभव-समृद्धि, प्राकृतिक सुषमा, सौन्दर्य से लक्ष्मण अभिभूत हो उठे। लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा, बड़े भैया, अयोध्या जाकर क्या करेंगे? इसी समृद्ध अन्न सुविधाओं से भरी स्वर्ग जैसी सोने की लंका में ही रहें तो कैसा रहे?''

लक्ष्मण का पथ-प्रदर्शन करते हुए श्रीराम ने उत्तर दिया, मेरे भोले भाई, मुझे सोने, धन-धान्य से भरपूर यह स्वर्णमयी स्वर्ग सरीखी लंका अच्छी नहीं लगती। भाई, सदा याद रखो-जननी माँ और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक अच्छी होती है, वे ही हमारे लिए पूजनीय हैं और हैं। हमें मातृभूमि की सेवा करनी चाहिए, उसी का सहारा चाहिए।

14. देने हारा और है, जो देता दिन-रैन

रहीम एक धनी नवाब थे। उनका नियम था कि वह प्रतिदिन सुबह ग़रीबों को दान दिया करते थे। उनके दान देने का नियम था कि वह अपने सामने रुपयों, पैसों की बड़ी ढेरी लगा लेते थे और आँखें नीची कर उस रुपयों-पैसों की मुट्ठी भर कर ग़रीबों को देते जाते थे। एक दिन उनके युग के बड़े कवि और नवाब के मित्र गंग कवि भी वहाँ उपस्थित थे। कवि गंग ने देखा एक व्यक्ति दो-तीन बार भीख ले चुका है, परन्तु रहीम फिर भी उसे दे रहे हैं। यह दृश्य

देखकर कवि गंग ने कहा–

सीखी कहाँ नवाब यह ऐसी अद्भुत देन ।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचे चढ़ें त्यों त्यों नीचे नैन ।।

कवि गंग की जिज्ञासा-कुतुहल थी । हे बड़े नवाब आपको यह देन कहाँ से मिली, ज्यों-ज्यों आपके हाथ दे रहे हैं, वे तो ऊँचे उठ रहे हैं, और आपकी आँखें नीचे झुकी जा रही हैं? तब बड़ी विनम्रता से रहीम ने उत्तर दिया–

देनहार और है जो देता दिन-रैन ।
लोग भरम हम पै करे यातै नीचे नैन ।।

15. आज मानवता कहाँ है?

वेद का आदेश है कि मनुष्य एक दूसरे के दुःख को अपना दुःख और दूसरे के सुख को अपना सुख समझे । परन्तु आज इसका बिल्कुल उल्टा हो रहा है, मानव दूसरे के दुःख में प्रसन्न होता है और दूसरे को सुखी देखकर उसे दुःख होता है । आज मानवता, नैतिकता नाम की कोई चीज़ कहीं भी दिखाई नहीं देती ।

यह संसार मनुष्यों की नहीं बल्कि हिंसक जानवरों की बस्ती बनता जा रहा है । अस्पतालों में देखो कि रोगी के प्राण पखेरू उड़ चुके हैं और डॉक्टर झूठे आश्वासन दे देकर पैसा बनाते रहते हैं । एक दवा जो स्टोर से 10 रुपये की मिल जाती है वही दवा अस्पतालों में 50 रुपये की मिलती है । सरकारी अस्पतालों का तो कहना ही क्या है? इसके अतिरिक्त भी बड़े आश्चर्यजनक नजारे देखने को मिलते हैं । अनेक बार रेल दुर्घटना और बसों की दुर्घटनायें होती रहती हैं, कईं बार देखा जाता है कि दुर्घटनाग्रस्त यात्री दम तोड़ चुके हैं और कुछ बुरी तरह से घायल हैं । वहाँ भी बहुत से लोग महिलाओं के आभूषण उतारने लगते हैं, लोगों की जेब टटोल कर जो रुपया-पैसा मिलता है उसे लेकर भाग जाते हैं ।

सामान भी ले जाते हैं । यह सामान्य जनता की या गुन्डों की ही बात नहीं है, पुलिस वाले भी ऐसा की करते हुए पाये गये हैं ।

इस देश का इतिहास तो यह रहा है कि यहाँ के लोग अपने हाथ पर रखी हुई रोटी भी दूसरों को दे देते थे और स्वयं भूखे रह जाते थे । हमारे पूर्वजों की इस तरह की अनेकों घटनाएं आज भी इतिहास में विद्यमान हैं । जैसे एक उर्दूशायर ने लिखा है–

मैं जो गुजरा एक दिन अचानक एक चमन के बीच से ।
एक बुलबुल ने आवाज़ दी और यूं कहकर के हँसती है ।
ओ जाने वाले संभल के चल यह जल्लादों की बस्ती है ।
हर चीज़ की क़ीमत है यहाँ पर इन्सान की कीमत कोई नहीं ।
यहाँ ज़िन्दगी मंहगी है बहुत और मौत बड़ी ही सस्ती हैं । ।

16. निःस्वार्थ सेवा और कर्म से

अमेरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन विश्व के उन महापुरुषों में गिने जा सकते हैं, जिन्होंने भाग्य या नियति के बल पर नहीं, प्रत्युत कर्म और अपने पुरुषार्थ से अमेरिकी राष्ट्रपति के रूप में अपनी स्थिति प्राप्त की । वह बचपन में बहुत गरीब थे, गरीबी के कारण वह लिखने-पढ़ने की इच्छा पूरी करने में कठिनाई अनुभव करते थे, परन्तु थोड़ी शिक्षा पाते ही उन्हें लिखने-पढ़ने की इच्छा प्रबल हो गई ।

अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए वह जानकार लोगों से पुस्तकें और अख़बार मांग कर पढ़ने लगे । एक बार वह एक जानकार से एक पुस्तक पढ़ने के लिए लाए । पढ़ते-पढ़ते उनकी आँख लग गई, जहाँ वह बैठे थे, वहाँ वर्षा होने लगी और वह मांगी हुई पुस्तक पानी में भीग गई । लिंकन बहुत दुःखी हुए । वह जब यह पुस्तक वापस करने उसके मालिक के घर पहुँचे, तो पुस्तक मालिक ने भीगी पुस्तक लेने से इनकार कर दिया । पुस्तक के मालिक ने पुस्तक की

कीमत चुकाने के लिए उसे अपने खेत में मजदूरी लिए बिना तीन दिन तक कटाई करने के लिए मजबूर किया।

लिंकन ने अपनी पढ़ाई की इच्छा पूरी करने के लिए पुस्तक के मालिक की मांग मंजूर कर ली। लिंकन को पुरुषार्थ के चक्कर में डालने वाली यह पुस्तक अमेरीका के पहले राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन की जीवनी थी। लिंकन ने देशभक्ति, निःस्वार्थ सेवा और पुरुषार्थ का पहला पाठ इसी पुस्तक से ग्रहण किया।

17. कभी किसी से उम्मीद न करो

कई वर्ष पुराना प्रसंग है, एक बड़े कार्यक्रम में अहमदाबाद में एक श्रद्धालु, कर्मठ, धुनी आर्य सज्जन से मिलने का सुयोग हुआ। उनकी कर्मठता, लगन देखकर उनके प्रति श्रद्धा जगी तो उनकी व्यक्तिगत स्थिति से दुःख भी हुआ। उन्हें न पूरा दीखता था, न भली प्रकार सुनाई देता था। उनकी शारीरिक अक्षमता के बावजूद उनका क्रियाशील जीवन प्रेरणा देता था। उनके अतीत के बारे में जिज्ञासा करने पर पहले तो उन्होंने टाला परन्तु बहुत आग्रह करने पर बतलाया–

विभाजन से पूर्व वह पंजाब में रेलवे के गार्ड थे, उनकी पत्नी भी विदुषी थीं। उनके चार बेटे थे, अचानक 45 वर्ष की आयु में पत्नी का निधन हो गया, उस समय उनकी पत्नी 35 वर्ष की थीं। पत्नी के स्वर्गवास के बाद उनके जीवन का उद्देश्य हो गया, वह पूरी मेहनत से चारों बेटों को ऊँची शिक्षा दें और उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करे। वह हर सप्ताहान्त में बच्चों के पास जाते, उनकी प्रगति और सुख-सुविधा का पूरा ख्याल करते।

उनके परिश्रम का फल हुआ, चारों पुत्र पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो गए, दो डॉक्टर बन गए, तीसरा इंजीनियर बना तो चौथा अच्छी सरकारी नौकरी पर लग गया। चारों बेटों के अच्छे

वैवाहिक संबंध भी हो गए। थोड़ी मेहनत से चारों के मकान भी बन गए। उनके भव्य मकान में गृहप्रवेश से एक दिन पहले बेटों-बहुओं के बीच चर्चा चली—सबने कहा, ''शुभ मुहूर्त पर सब बातें ठीक हो जाएंगी, केवल एक कमी खटकेगी, हमारे पिताजी की हाज़री की। उनके मुँह पर एक सफेद दाग है, उन्हें ऊँचा सुनाई देता है, पूरा दीखता भी नहीं। उनका मेहमानों को क्या परिचय दिया जाए। अच्छा हो उस मौके पर उन्हें कहीं बंद कर दिया जाए।''

ठीक मुहूर्त के मौके पर बेटे आए पिता से कहा, ''पार्टी के हल्ले-गुल्ले में आपको तकलीफ होगी, आपको एकांत में पहुँचा दें।'' बेटे पिता को पकड़कर ले गए और स्टोर में बंद कर गए। देर रात तक जश्न हुआ, पार्टी में अच्छी रौनक रही, जब सब मेहमान चले गए तब उन्हें स्टोर से बाहर निकाला गया।

सारी आप बीती सुनाकर वह वृद्ध आर्य सज्जन बोले, ''मैंने उसी दिन घर छोड़ दिया। बेटों के प्रति मेरा जो फर्ज़ था, उसे मैंने ईमानदारी से पूरा किया। बेटों से उम्मीद तो मैं पहले ही नहीं करता था, परन्तु उस घटना के बाद उस घर में मेरा टिकना असम्भव हो गया।''

18. स्वास्थ्यरहस्य : पैदल चलो

अरब में एक फकीर रहता था। उसके इलाज से कठिन से कठिन बीमारियाँ भी दूर हो जाती थीं। उन्हीं दिनों बग़दाद का एक सरदार सिरदर्द की बीमारी से बहुत परेशान था। सब तरह के इलाज कराने पर भी जब उसे कोई लाभ नहीं हुआ। तब कई लोगों ने सरदार को सलाह दी कि वह उस फकीर अल्लामा इंशा से इलाज कराए। सरदार ने अपने एक सेवक को अल्लामा के पास भेजा। जब उसका सेवक फकीर के ठिकाने पर पहुँचा तब उसने वहाँ एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को ऊँट चराते हुए देखा। सेवक ने ऊँट चराने

वाले से फकीर अल्लामा इंशा का पता पूछा। ऊँट चराने वाले ने कहा, ''कहिए क्या बात है? मैं ही अल्लामा इंशा हूँ।''

यह देखकर सेवक को बहुत अचंभा हुआ। उसने फकीर के नीरोग शरीर के बारे में जिज्ञासा प्रकट की तो अल्लामा बोले, ''मैं प्रतिदिन पैदल चलता हूँ और इस पैदल चलने को ही शरीर और मन की श्रेष्ठ साधना के रूप में अपनाए हुए हूँ।'' इस पर सेवक ने फकीर से सरदार का इलाज करने के लिए सरदार के घर पर जाने की प्रार्थना की तो फकीर ने उत्तर दिया, ''माफ कीजिए, मैं इलाज के लिए किसी के घर नहीं जाता।''

सेवक निराश लौट आया। उसने सरदार को सारा ब्यौरा बताया, तब सरदार ने स्वयं ही फकीर के पास जाने का निश्चय किया और कई दिनों के सफर के बाद वह अल्लामा के पास पहुँचा। अल्लामा ने उसे भली प्रकार देखा। उसके बाद उसे एक कीमती दवाई की पुड़िया देते हुए कहा, ''इस बढ़िया दवा की सौ खुराक लेनी है। अल्लाह ने चाहा तो तुम्हारा सिर दर्द छूमंतर हो जाएगा। फकीर ने सरदार को सलाह दी जब भी पसीना आए तब थोड़ी-सी दवा सिर पर मल लेना।''

अल्लामा के आदेशानुसार सरदार को पैदल ही वापस जाना पड़ा। खूब पसीना आने के लिए सरदार ने तेज चलना आरम्भ कर दिया। बीस दिन के लम्बे सफर में सरदार को कई बार पसीना आया और उसने हर बार पुड़िया खोलकर दवाई सिर पर लगा ली। घर लौटने तक सरदार का सिर दर्द पूरी तरह दूर हो गया था 'अब बची हुई दवा का क्या किया जाए' –प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए सरदार ने अपने सेवक को फकीर के पास भेजा।

जब फकीर अल्लामा इंशा ने सेवक की बात सुनी तो हँसते हुए कहा, ''वह दवा तो मामूली मिट्टी है, उसे फेंक सकते हैं।

तुम्हारे सरदार का असली इलाज तो लंबा सफर तय करना और लौटना था। अपने सरदार और साथियों को पैदल चलने के लाभ बताना और कहना कि आदमी पैदल चलने की आदत छोड़ देने से ही रोगी हो जाता है।''

19. आग से जूझने वाला वह व्यक्तित्व

भीषण आग लगने पर खतरे की घंटी के बजने पर भी आँखों वाले तो अपनी चपेट में लेने के लिए बढ़ती तेज आग से अपना बचाव कर सकते हैं, परन्तु ऐसी परिस्थिति में जब संगी-साथी चले जाएँ, साथी भी कमरे का दरवाजा बाहर से अचानक बंद कर जाएँ तो किसी की भी हिम्मत पस्त हो सकती है परन्तु 1995 में मई मास की भीषण गर्मी में कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली की बहुमंजिला कैलाश बिल्डिंग की आठवीं मंजिल में नेत्रहीन दीनानाथ यादव ने गजब के धैर्य एवं साहस का परिचय दिया।

वह आग लगने के समय अपने कमरे में अकेला रह गया था, उसके सभी साथी अपनी प्राणरक्षा के लिये जा चुके थे, एक सुरक्षाकर्मी ने हाल का दरवाजा भी बंद कर दिया था। दीनानाथ ने कुर्सी पर खड़े होकर दरवाजा खोलने की कोशिश की। वह दरवाजा नहीं खुला। हिम्मत न हाकर उसने पड़ोस में अवस्थित इंडियन आयल कंपनी के दफ्तर में फोन किया। कई बार की कोशिश करने पर फोन तो मिला, तो उस पड़ोस के इमारत के भी सब कर्मचारी आग की लपटों और उसे बचाने के प्रबन्ध को देखने बाहर जा चुके थे। अंत में कई बार की कोशिश के बाद उनके अपने एक साथी-सहयोगी दिलीप चावला से सम्पर्क स्थापित हुआ। उन्होंने फायर ब्रिगेड वालों को सूचना दी और उनके साथ पम्प के सहारे ऊपर चढ़े और आठवीं मंजिल से नेत्रहीन दीनानाथ यादव को सकुशल निकाल लाए।

दीनानाथ यादव इंडियन आयल कम्पनी में स्टेनोग्राफर हैं, उनकी आयु तीस वर्ष है, नेत्रहीन हैं। महीने भर पहले ही उनका विवाह हुआ था। उन्होंने केवल भाग्य पर भरोसा नहीं किया, प्रत्युत आग और धुएँ से कैसे बचें—इसके लिए अपने पहले पढ़े पाठ से गीले रूमाल के प्रयोग से आग और धुएँ से अपना बचाव किया।

कह सकते हैं—दीनानाथ यादव जैसे लोग ही मानव के अदम्य साहस और जीवन शक्ति के उदाहरण बनते हैं। ऐसे व्यक्ति को विकलांग कहना अनुचित है। शरीर के किसी अंग का अशक्त होना या काम न करना किसी भी मानव के समूचे व्यक्तित्व को मर्यादित नहीं कर सकता। संकट के समय बाधाओं से जूझने वाले व्यक्ति को आँख वाले से कम आंकना ठीक नहीं, आग के बीच आँख वालों की हड़बड़ी, आपाधापी के बीच अकेले पड़े दीनानाथ ने जैसे संकट का सामना किया, सूझबूझ दिखाई, वह सबके लिए अनुकरणीय है।

20. अपना अतीत कभी न भूलो

भारतीय संस्कृति के लिए समर्पित राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन की बड़ी सादी वेशभूषा थी। किसी भी छोटे-से-छोटे गाँव का रहने वाला मामूली से मामूली कोटि का दर्जी जैसा कुर्ता सी सकता है, वैसा अत्यंत साधारण कोटि का कुर्ता और वही ही मोटी खादी की धोती वह पहनते थे। उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी पद की कोई लालसा नहीं की। कांग्रेस का अध्यक्ष पद उन्हें प्राप्त हुआ, उस पर भी उन्होंने लात मार दी। उसके बाद उन्हें उड़ीसा के राज्यपाल पद को सुशोभित करने का भी निमंत्रण मिला। परन्तु उन्होंने उसे भी अस्वीकृत कर दिया। देश में जब पदों और कुर्सियों के लिए होड़ मची हुई हो, जिसके कारण सब राजनीतिक राष्ट्रीय संस्थाएँ निर्बल होती जा रही थीं, उस काल में टंडन जी की पदों से निर्लिप्तता अनूठी थी। उनका क्या जीवन आदर्श था, उसकी बानगी 1960 ई० की नासिक कांग्रेस पर राजर्षि टंडन जी के विदाई भाषण से

मिलती है ।

टंडन जी ने नासिक कांग्रेस के अधिवेशन का समापन करते हुए कहा था । एक राजा था, वह भटककर बियाबान जंगल में पहुँच गया, उसकी जंगली जानवरों से रक्षा कर उन्हें सकुशल राजधानी तक पहुँचाने में एक युवक गड़रिए का योगदान था । राजा उस गड़रिए की वीरता, बुद्धिमत्ता, हाजिर-जवाबी से बहुत प्रभावित हुआ । उसने उसे अपना दीवान बना दिया । दीवान बन कर भी वह अपनी गरीबी और निम्न स्थिति को नहीं भूला । वह प्रतिदिन एक कोठरी में अपने उन पुराने कपड़ों को देखकर फिर राजकार्य करता था । दरबारियों ने राजा से शिकायत की । दीवान तो लूटता है और लूट को एक कोठरी में प्रतिदिन देखता है । राजा ने दीवान को बुलाकर वह कोठरी देखनी चाही । दीवान ने वह कोठरी दिखाई, फिर अपने पुरान कपड़े पहने और बाँसुरी हाथ में लेकर राजा से बोला, ''महाराज, आपका दीवान बनकर मैं अपनी गरीबी और पुरानी हालत को न भूल जाऊँ, इसलिए उनसे रोज नसीहत लेता था । अब मैं चला ।'' बाँसुरी उठा कर वह चला गया ।

टंडन जी ने कहा, ''जैसे एक दीवान को अपनी पहली गरीबी की हालत से सीख लेनी थी, मैं चाहता हूँ कि मेरा देश और मेरे देशवासी आजादी की लड़ाई की अपनी कुर्बानी और बलिदान को कभी न भूलें ।''

21. पहले मैंने अपनी आदत सुधारी

गाँधी जी दृढ़ निश्चयी व्यक्ति थे । परन्तु उन दिनों उन्हें मीठी चीजें खाने का शौक था । परन्तु जनहित के लिए उन्हें मीठा छोड़ना पड़ा । एक दिन एक माँ अपनी बेटी के साथ बापू के पास आई । माँ बहुत अधिक चिन्ता में थी । गाँधी जी ने उस महिला से उसकी चिन्ता के बारे में पूछा तो उसने बतलाया कि उनकी बेटी बहुत मिठाई खाती है उसे चिन्ता है कि कहीं ज्यादा मीठा खाने से उसकी सेहत ही न

बिगड़ जाए। उसने बापू से अनुरोध किया कि वह उनकी बेटी को समझा दें। महिला की सारी बात सुनकर गाँधी जी ने अपनी बेटी के साथ फिर आने के लिए कहा। लड़की की माँ ने सोचा, शायद गाँधीजी कोई दवाई देंगे, ऐसा सोचकर एक सप्ताह के पश्चात् फिर पहुँची।

गाँधीजी ने उसकी बेटी को प्यार से समझाया और मीठा खाने की आदत पर नियंत्रण करने के लिए कहा। माँ ने आश्चर्यचकित हो कहा, ''मुझे ख़्याल था कि आप कोई दवा देंगे, परन्तु आपने तो केवल बच्ची को समझा दिया है, मैं भी इसे समझा चुकी हूँ। परन्तु वह समझती तो नहीं। बापू पर आप यह बात तो बच्ची को उसी दिन समझा सकते थे, आपने तब ही क्यों नहीं समझा दिया?''

गाँधीजी हँसकर बोले, ''बहन, उस दिन मैं बेटी को यह कहने का अधिकारी नहीं था, तब तक मैं भी बहुत मीठा खाता था, दूसरों को नसीहत देने से पहले मैंने अपनी वह आदत सुधारी तो आपकी बिटिया को समझा दिया है, आप भरोसा रखें अब वह मीठा खाना कम कर देगी।'' सचमुच उस दिन से वह लड़की मीठा कम खाने लगी।

22. समर्पित व्यक्तित्व

कुमारिल भट्ट अपने समय के बड़े वैदिक विद्वान् थे। जब उन्होंने शिक्षा पूर्ण की तब नव स्नातक भट्टाचार्य का विवाह कर दिया गया। उन्हीं दिनों उन्हें वेदभाष्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। कुछ ही दिन बीते होंगे कि आचार्य जी की माता जी का स्वर्गवास हो गया। युवा कुमारिल भट्टाचार्य ने हाथ जोड़कर पत्नी से अनुरोध किया, ''मैं वेदों का भाष्य कर रहा हूँ। अभी तक ब्रह्मस्थ हो ब्रह्म वेदज्ञान का गम्भीर कार्य कर रहा हूँ। जब तक माता श्री थीं, वह शरीर-रक्षा का कार्य करती थीं। अब तुम से विनती है कि

वेदभाष्य के पुनीत कार्य में तुम मेरी सहायता करो ।''

पत्नी ने हाथ जोड़कर कहा, ''तथास्तु । भगवन्, ऐसा ही होगा ।'' 68 वर्ष की आयु में वेदभाष्य का कार्य पूर्ण हो गया । वेदभाष्य पूर्ण होने से आचार्य अत्यन्त प्रसन्न थे । उस दिन पूर्णिमा की रात थी । कुटिया के प्रांगण में आचार्य सो रहे थे । अचानक रात के समय उनकी नींद खुली । समीप ही एक काष्ठ शय्या पर आचार्य की तपस्विनी पत्नी सो रही थी । आचार्य के उठते ही आहट पाकर तपस्विनी पत्नी की नींद भी खुल गई । पति को अपने चेहरे की ओर देखते देखकर वह बोलीं, ''अब जीवन के अंतिम चरण में हम अपना व्रत क्यों तोड़ें । आइए, आचार्य-प्रवर, अभी तक आपने वेदभाष्य में अपना जीवन समर्पित किया है, अब जीवन के बचे क्षण वेदप्रचार के लिए अर्पित कर दें ।''

आचार्य बोले, ''तथास्तु, ऐसा ही होगा । सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् ।'' उन्होंने तपस्विनी पत्नी को प्रणाम किया और दोनों पति-पत्नी जीवन के शेष क्षण वेद प्रचार के लिए अर्पित करने के लिए गृहत्याग कर निकल पड़े । स्मरण रहे कि यही वैदिक विद्वान् पं० कुमारिल भट्ट आदिशंकराचार्य के गुरु थे ।

23. खम्भे ने पकड़ रखा है

एक समय शराब का एक व्यसनी एक महात्मा के पास गया और विनम्र स्वर में बोला, ''गुरुदेव, मैं इस शराब के व्यसन से बहुत दुःखी हो गया हूँ । इसकी वजह से मेरा घर बर्बाद हो रहा है । मेरे बच्चे भूखे मर रहे हैं, परन्तु मैं शराब के बिना नहीं रह सकता हूँ । मेरे घर की शांति भंग हो गई है । कृपया आप मुझे कोई सरल उपाय बताएं जिससे में अपने घर की शांति फिर से पा सकूँ ।'' गुरुदेव ने कहा, ''जब इस व्यसन से तुमको इतना नुकसान होता है तो तुम इसे छोड़ क्यों नहीं देते?'' व्यक्ति बोला, ''पूज्य श्री, मैं शराब को छोड़ना चाहता हूँ परन्तु यह मेरे खून में इस कदर समा गई है कि मुझे

छोड़ने का नाम ही नहीं ले रही है ।'' गुरुदेव ने हँस कर कहा, ''कल तुम फिर आना । मैं तुम्हें बता दूँगा कि शराब कैसे छोड़नी है ?''

दूसरे दिन निश्चित् समय पर वह व्यक्ति महात्मा के पास गया । उसे देख महात्मा झट से खड़े हुए और एक खम्भे को कस कर पकड़ लिया । जब उस व्यक्ति ने महात्मा को इस दशा में देखा तो कुछ समय तो वह मौन खड़ा रहा, परन्तु जब काफी देर बाद भी महात्मा जी ने खम्भे को नहीं छोड़ा तो उससे रहा नहीं गया और पूछ बैठा कि गुरुदेव आपने व्यर्थ इस खम्भे को क्यों पकड़ रखा है? गुरुदेव बोले, ''वत्स ! मैंने इस खम्भे को नहीं पकड़ा है, यह खम्भा मेरे शरीर को पकड़े हुए हैं । मैं चाहता हूँ कि यह मुझे छोड़ दे । परन्तु यह तो मुझे छोड़ ही नहीं रहा है ।'' उस व्यक्ति को अचम्भा हुआ । वह बोला, गुरुदेव मैं शराब जरूर पीता हूँ मगर मूर्ख नहीं हूँ । आपने ही जानबूझ कर इस खम्भे को कस कर पकड़ रखा है । यह तो निर्जीव है यह आपको क्या पकड़ेगा । यदि आप दृढ़ संकल्प कर लें तो इसी वक्त इसको छोड़ सकते हैं ।

गुरुदेव बोले, ''नादान मनुष्य, यही बात तो मैं तुम्हें समझाना चाहता हूँ कि जिस तरह मुझे खम्भे ने नहीं बल्कि मैंने ही उसे पकड़ रखा था, उस तरह इस शराब ने तुम्हें नहीं पकड़ा है बल्कि सच तो यह है कि तुमने ही शराब को पकड़ रखा है । तुम कह रहे थे कि यह शराब मुझे नहीं छोड़ रही है जब कि सत्य यह है कि तुम अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लो तो इसी वक्त तुम्हारी शराब पीने की आदत छूट जाएगी । शरीर की हर क्रिया मन के द्वारा नियंत्रित होती है और मन में जैसी इच्छा शक्ति प्रबल होती है वैसा ही कार्य सफल होता है ।'' वह शराबी गुरु के इस अमृत वचनों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसी वक्त भविष्य में कभी शराब न पीने का सुदृढ़ संकल्प किया । उसके घर में खुशियाँ लौट आई और वह शांति से

जीवन-यापन करने लगा ।

24. पाप का बाप कौन है ?

एक पंडित जी कई वर्षों तक काशी में शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद अपने गांव लौटे । गांव के एक किसान ने उनसे पूछा, ''पंडित जी, आप हमें यह बताइये कि पाप का बाप कौन है ?'' प्रश्न सुन कर पंडित जी चकरा गए । पाप का भी बाप होता है यह उनकी समझ और अध्ययन के बाहर था । पंडित जी को लगा कि उनका अध्ययन अभी अधूरा है इसलिए वह फिर काशी लौटे । फिर अनेक गुरुओं से मिले मगर उन्हें किसान के प्रश्न का उत्तर नहीं मिला ।

अचानक एक दिन उनकी मुलाक़ात एक वेश्या से हो गई । उसने पंडित जी से उनकी परेशानी का कारण पूछा तो उन्होंने अपनी समस्या बता दी । वेश्या बोली, ''पंडित जी, इसका उत्तर है तो बहुत ही आसान लेकिन इसके लिए कुछ दिन आपको मेरे पड़ोस में रहना होगा ।'' पंडित जी के हाँ कहने पर उसने अपने पास ही उनके रहने की अलग से व्यवस्था कर दी ।

एक दिन वेश्या बोली, ''पंडित जी, आपको भोजन बनाने में बहुत तकलीफ होती है । यहाँ देखने वाला तो और कोई है नहीं । आप कहें तो मैं नहा-धोकर आपके लिए कुछ भोजन तैयार कर दिया करूँ । आप मुझे यह सेवा का मौका दें तो मैं दक्षिणा में 5 स्वर्ण मुद्राएं भी प्रतिदिन दूँगी ।'' स्वर्ण मुद्रा का नाम सुन कर पंडित जी को लोभ आ गया । साथ में पका-पकाया भोजन अर्थात् दोनों हाथों में लड्डू । पंडित जी ने हामी भर दी और वेश्या से बोले, ''ठीक है, तुम्हारी जैसी इच्छा लेकिन इस बात का विशेष ध्यान रखना कि कोई देखे नहीं तुम्हें मेरी कोठी में आते-जाते हुए ।''

वेश्या ने पहले ही दिन कई प्रकार के पकवान बनाकर पंडित

जी के सामने परोस दिए । परन्तु ज्यों ही पंडित जी खाने को तत्पर हुए त्यों ही वेश्या ने उनके सामने परोसी हुई थाली खींच ली । इस पर पंडित जी क्रुद्ध हो गये और बोले, ''यह क्या मजाक है,'' वेश्या ने कहा, ''यह मजाक नहीं पंडित जी, यह तो आपके प्रश्न का उत्तर है । यहाँ आने से पहले आप भोजन तो दूर किसी के हाथ का पानी भी नहीं पीते थे । मगर स्वर्ण मुद्राओं के लोभ में आपने मेरे हाथ का बना खाना भी स्वीकार कर लिया । यह लोभ ही पाप का बाप है ।''

25. कवि कालिदास के 10 सर्वश्रेष्ठ उत्तर

प्र. 1 दुनियाँ में भगवान् की सर्वश्रेष्ठ रचना क्या है ?

उ. माँ

प्र. 2 सर्वश्रेष्ठ फूल कौन-सा है ?

उ. कपास का फूल ।

प्र. 3 सर्वश्रेष्ठ सुगन्ध कौन सी है ?

उ. वर्षा से भीगी मिट्टी की सुगन्ध ।

प्र. 4 सर्वश्रेष्ठ मिठास कौन सी है ?

उ. वाणी की ।

प्र. 5 सर्वश्रेष्ठ दूध किसका है ?

उ. माँ का

प्र.6 सबसे काला क्या है ?

उ. कलंक ।

प्र.7 सबसे भारी क्या है ?

उ. पाप

प्र.8 सबसे सस्ता क्या है ?

उ. सलाह

प्र.9 सबसे महंगा क्या है ?

उ. सहयोग

प्र.10 सबसे कड़वा क्या है ?

उ. सत्य ।

जो अपने बच्चों को डाँट कर अकेले में रोती है, वह माँ है और माँ ऐसी ही होती है ।

जितना बड़ा प्लाट होता है उतना बड़ा बंगला नहीं होता । जितना बड़ा बंगला होता उतना बड़ा दरवाज़ा नहीं होता । जितना बड़ा दरवाज़ा होता है उतना बड़ा ताला नहीं होता । जितना बड़ा ताला होता है, उतनी बड़ी चाबी नहीं होती । परन्तु चाबी पर पूरे बंगले का आधार होता है । इसी तरह मानव के जीवन में बंधन और मुक्ति का आधार मन की चाबी पर ही निर्भर करता है । हे मानव ! तू सब कुछ कर पर किसी को परेशान मत कर । जो बात समझ न आए उस बात में मत पड़ । पैसे के अभाव में जगत् 1 प्रतिशत दुःखी है, समझ के अभाव में जगत् 99 प्रतिशत दुःखी है ।

26. संसार सराय है

अध्यात्मवाद में ईश्वर की माया, विद्या की चर्चा की जाती है । इसका उपदेश गृहस्थियों ने गृहस्थियों को दिया । संसार सागर में रह कर दुःख-सुख की लहरों से टकराव जरूरी है । आध्यात्मिक व्यक्ति इन सब को आसानी से सहन कर लेता है परन्तु दूसरा नहीं ।

श्रीकृष्ण का जन्म कारागार में हुआ । गोकुल में भी आराम से नहीं रहे । लड़ाईयों में हार भी खाई और जीते भी । मथुरा में कंस को मारा भी परन्तु वहाँ से उनको भागना भी पड़ा । सागर में घिरे द्वीप पर द्वारिका बसानी पड़ी थी । अतः जीवन में दुःख-सुख तो आयेगा ही । जैसे युद्ध में ढाल की जरूरत होती है इसी प्रकार सांसारिक लड़ाई में भी काम, क्रोध आदि पाँच शत्रुओं के वार से बचने के लिए आध्यात्मवाद की ढाल जरूरी है ।

जो लोग भजन-पूजा करते हैं। साधु संतों की सेवा करते हैं। उनके बारे में कुछ लोग भावना रखते हैं कि उन्हें दुःखी को सताना नहीं चाहिए। अरे मैं कहता हूँ—तुम ज्यादा भजन करते हो कि प्रह्लाद करता था। प्रह्लाद को कितने दुःख सहने पड़े। कितने कष्ट मिले। उसे पर्वत से गिराया गया, जिन्दा जलाने का प्रयास किया। बाप के कैदखाने की सज़ा भुगतनी पड़ी।

निश्चय और पूर्णविश्वास रख कर ही ईश्वर का भजन करो। क्या हम ऐसा करते हैं? ईश्वर जो देंगे-लेंगे सुख अथवा दुःख। प्रह्लाद अध्यात्मवाद अर्थात् ओ३म् नाम के सहारे—विश्वास रख कर जलने से बच गए। पहाड़ से गिराये जाने पर भी बच गए। सांपों से बच गए।

27. शान्ति की चाह

एक बार वैकुण्ठ में विष्णु सभी को मनपसन्द चीजें दान कर रहे थे, उन्होंने मन से यह सोच लिया कि आज जो भी मांगेगा उसकी मनोकामना पूर्ण की जाएगी। मांगने वालों का तांता लगा हुआ था। कोई धन मांग रहा था, कोई संतान, कोई स्वास्थ्य मांग रहा था, कोई वैभव और कोई कीर्ति। विष्णु दोनों हाथों से लुटा रहे थे। उनके बगल में लक्ष्मी जी विराजित थीं। वे भी इस दान कार्य में विष्णु का हाथ बंटा रही थीं। महालक्ष्मी ने देखा, भंडार धीरे-धीरे कम हो रहा है। उन्होंने विष्णु का हाथ पकड़ते हुए कहा, ''आप तो दोनों हाथों से लुटाए जा रहे हैं। परन्तु बैकुंठ का खजाना खाली हो रहा है उसका क्या? कुछ भविष्य की भी चिन्ता करें।

मुस्कान बिखेरते हुए विष्णु ने कहा, ''तुम चिन्ता न करो। मैंने अपने पास एक ऐसी अमूल्य और महान निधि संजोकर रखी हुई है जिसके रहते हमें किसी की परवाह नहीं है। उस निधि को किसी ने मांगा नहीं है और न ही किसी से मांगे जाने की सम्भावना है।'' महालक्ष्मी को जिज्ञासा हुई, पूछा—बताइए प्रभु वह कौन सी

निधि है ? विष्णु ने कहा—शांति ।

अनंत वैभव का स्वामी होने पर भी यदि मन अशांत और उद्विग्न रहता है तो उस वैभव से कोई लाभ नजर नहीं आता । आज के विज्ञान ने आदमी को समृद्ध होने का मार्ग तो बता दिया, परन्तु शांति का मार्ग नहीं बताया । आधुनिक अमीर बाहर से तो अमीर है, पर भीतर से ग़रीब है । यह काल्पनिक दृष्टान्त है ।

28. पड़ोसी

एक बार की बात है रामपुर गांव में एक सज्जन परिवार रहता था । घर में पांच सदस्य थे—माँ-बाप, दो भाई व एक छोटी बहन । माँ बड़ी साध्वी स्त्री थी । पिता बड़ा परिश्रमी था । प्रातः होते ही वह अपने काम पर चला जाता । माँ बच्चों को स्नान आदि करवा कर पाठशाला छोड़ आती । उनका हर कार्य समयानुसार होता । पति-पत्नी में बड़ा प्यार था । पत्नी अपने पति व बच्चों की सेवा को अपना धर्म मानती । घर का प्रत्येक कार्य वह स्वयं करती । जब बच्चे पाठशाला से घर आते तो वह उन्हें बड़े प्यार से भोजन खिलाती । शाम पड़ने पर उन्हें वह पढ़ाती थी । उनका घर बड़ा खुशहाल था । बच्चे बड़े हो गए । पढ़-लिख कर वह बड़े आदमी बने ।

माँ-बाप की सेवा करना वह अपना परम धर्म समझते । जब कभी वह घर से बाहर जाते माँ-बाप के चरण स्पर्श कर उनसे आशीर्वाद लेते । माँ-बाप उन्हें बड़े लाड़-प्यार करते । उनके घर में लक्ष्मी का निवास था ।

उन्हीं के पड़ोस में दुर्बुद्धि दुष्ट प्रकृति का परिवार भी रहता था । उस आदमी ने सोचा इसके घर में कहीं धन पड़ा है । एक दिन उसने उस भले आदमी के घर चोरी करने की ठान ली । एक रात जब घर के सब लोग सो रहे थे । उसने धीरे से उसके घर में घुस कर

तलाशी ली। परन्तु उसे वहाँ से कुछ न मिला। थक हार कर अपने घर लौट आया। सारी रात सोचता रहा यह कैसे है। कुछ समझ नहीं आता। एक दिन जब भला आदमी घर से काम के लिए निकला तो दुष्ट भी उसके साथ हो लिया। थोड़ी दूर जाने के बाद उसने उस आदमी से पूछा। कहो भाई तुमने धन कहाँ छिपा रखा है। तुम इतने धनी कैसे हो।

भले आदमी ने बड़े प्यार से कहा– मेरे पास तो संतोष धन है। परिश्रम का धन है। मैं जितना खर्च करता हूँ वह उतना ही बढ़ता है। दुष्ट आदमी यह सुनकर बड़ा शर्मिन्दा हुआ। उसने भी काम करने की सीख ली।

29. धन का संचय

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने गुरुवर चाणक्य के आशीर्वाद से सारे भारत को एक सूत्र में बांध दिया था। प्रजा की सुख शान्ति के लिए हर प्रकार के साधन जुटाए गए। सारे साम्राज्य में सुख शान्ति का वातावरण था। सम्राट् चन्द्रगुप्त वृद्ध हो गये थे। उन्होंने अपने गुरुवर व प्रधानमंत्री चाणक्य से विचार-विमर्श करके अपना राजपाठ अपने सुपुत्र युवराज बिम्बसार को सौंप दिया और सम्राट चन्दगुप्त ने स्वामी भद्रबाहु से दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की जो चाणक्य ने सहर्ष स्वीकार कर ली।

सम्राट् चन्द्रगुप्त जब भद्रबाहु स्वामी जी से दीक्षा लेने लगे तो उस अवसर पर एकत्रित प्रजाजनों ने एक स्वर में कहा, ''ऐसे दयालु सम्राट की अनुपस्थिति में हम प्रजाजनों का क्या होगा?''

सम्राट् ने युवराज बिम्बसार की ओर इशारा करते हुए कहा– ''अब ये युवराज बिम्बसार तुम्हारे सम्राट हैं। यही अब तुम्हारे सुख-दुःख के साथी होंगे।''

दीक्षा लेने के पश्चात् साम्राज्य का खजाना खोल दिया गया।

जनता में यथा योग्य सारी राज्य सम्पत्ति बाँट दी गई । इसे देख कर एक मंत्री से न रहा गया और वह बोला,''महाराज, इस नए सम्राट के लिए भी कुछ धन छोड़ दीजिए ।'' तो सम्राट् ने उत्तर दिया ।

पुत्र सुपुत्र तो क्यों धन संचय
फिर ऐश्वर्य कमा लेगा ।
पुत्र कुपुत्र तो क्यों धन संचय
पल भर में सभी गंवा देगा ।

सम्राट् चंद्रगुप्त के ऐसे वचन सुनकर सबने सिर झुका दिये ।

30. पुरुषार्थ और परमेश्वर

बूढ़े सेठ ने सुबह ही सुबह मुनीम को बुलाया और बोला ''हिसाब-किताब लगा कर बताओ कि मेरे बाद मेरी कितनी पीढ़ियां मेरे कमाए हुए धन से बैठ कर खा सकती है ।''

मुनीम ने हिसाब-किताब लगाने के बाद कहा, ''अगर आपकी आने वाली सात पीड़ियाँ कुछ भी न करें तो वह आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सकती है ।''

''बस'', मुनीम की बात सुनकर सेठ बेहोश हो गया । बड़ी मुश्किल से होश में आया तो कहने लगा, ''मैं तो दस पीढ़ियों का प्रबंध भी नहीं कर सका । कोई ऐसा उपाय सोचो जिससे कम से कम दस पीढ़ियों का प्रबन्ध तो हो जाए ।''

पास ही बैठे एक व्यक्ति ने कहा—''नगर के छोर पर गरीबों की बस्ती में एक निर्धन ब्राह्मण रहता है । अगर एक समय आपके घर भोजन करने के बाद वह आपको आशीर्वाद दे दे तो यह काम हो सकता है ।

सेठ ने तुरन्त गाड़ी तैयार कराई, मुनीम को साथ लिया और उस ब्राह्मण की कुटिया पर जा पहुँचा । आवाज लगाने पर जब ब्राह्मण बाहर आया तो सेठ ने हाथ जोड़ कर कहा कि कृपा करके

आज दोपहर का भोजन आप मेरे घर पर कर लें ।

ब्राह्मण ने कहा, ''आज दोपहर के भोजन का निमंत्रण मुझे पहले ही किसी और से मिल चुका है ।

''कोई बात नहीं'', सेठ ने कहा, ''दोपहर का नहीं तो शाम का भोजन आप मेरे घर पर कर लें ।''

ब्राह्मण ने कहा, ''आप यहीं रुकें, मैं अपनी पत्नी से पूछ कर आता हूँ ।'' कुछ ही देर में ब्राह्मण फिर आ गया और बोला, ''मेरी पत्नी कहती है कि शाम के भोजन का प्रबंध घर में है ।''

सेठ ने कहा, ''कोई बात नहीं, आप कल सुबह का भोजन हमारे घर में कर लीजिए ।''

ब्राह्मण बोला, ''जिस प्रभु ने आज की व्यवस्था की है, कल की बात भी वही सोचेंगे । जो ईश्वर कीड़ी से लेकर कुंजर तक सभी को पालते हैं, वे मेरी सुध कैसे नहीं लेंगे ।''

ब्राह्मण के वचनों को सुनकर सेठ की आँखों के आगे से अंधकार हट गया । उसने मुनीम से कहा, ''जो रुपया मेरे पास फालतू है उसे समाज और देश के हित में लगा दो । आने वाली पीढ़ियाँ स्वयं पुरुषार्थ करेंगी । स्वयं धन कमाएंगी, जिस ईश्वर ने मुझे इतना दिया है वह उन्हें क्यों नहीं देगा ।

31. माँ की सीख

विद्यासागर के बचपन की यह एक सच्ची घटना है । एक सुबह उनके घर के द्वार पर एक भिखारी आया । उसको हाथ फैलाये देख उनके मन में करुणा उमड़ी । वे तुरन्त घर के अन्दर गए और उन्होंने अपनी माँ से कहा कि वे उस भिखारी को कुछ दे दें । माँ के पास उस समय कुछ भी नहीं था सिवाय उनके कंगन के । उन्होंने अपना कंगन उतारकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के हाथ में रख दिया और कहा, जिस दिन तुम बड़े हो जाओगे उस दिन मेरे लिए दूसरा

बनवा देना, अभी इसे बेचकर जरूरतमंदों की सहायता कर दो ।''

बड़े होने पर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपनी पहली कमाई से अपनी माँ के लिए सोने के कंगन बनवाकर ले गए और उन्होंने माँ से कहा, ''माँ ! आज मैंने बचपन का तुम्हारा कर्ज़ उतार दिया ।'' ''बेटा ! मेरा कर्ज़ तो उस दिन उतर पाएगा जिस दिन किसी और जरूरतमंद के लिए मुझे ये कंगन दोबारा नहीं उतारने होंगे ।''

माँ की सीख ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के दिल को छू गई और उन्होंने प्रण किया कि वे अपना जीवन गरीब-दुखियों की सेवा करने और उनके कष्ट हरने में व्यतीत करेंगे और उन्होंने अपने सारे जीवन में ऐसे ही किया । महापुरुषों के जीवन कभी भी एक दिन में तैयार नहीं होते । अपना व्यक्तित्व गढ़ने के लिए वे कई कष्ट और कठिनाइयों के दौर से गुजरते हैं और हर महापुरुष का जीवन कहीं न कहीं अपनी माँ की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित रहता है ।

32. हम सब किसी भी घर में एक साथ नहीं जाते

एक दिन एक महिला अपने घर के बाहर आई और उसने तीन संतों को अपने घर के सामने बैठे देखा । वह उन्हें जानती नहीं थी । महिला ने कहा–''कृपया भीतर आइए और भोजन करिए ।''

संत बोले–''क्या तुम्हारे पति घर पर हैं ?''

महिला ने कहा–''नहीं, वे अभी बाहर गये हैं ।''

संत बोले–''हम तभी भीतर आएंगे जब वह घर पर हों ।''

शाम को उस महिला का पति घर आया तो महिला ने उसे यह सब बताया ।

महिला के पति ने कहा–''जाओ और उनसे कहो कि मैं घर आ गया हूँ और उनको आदर सहित बुलाओ ।''

महिला बाहर गई और उनको भीतर आने के लिए कहा ।

संत बोले–''हम सब किसी भी घर में एक साथ नहीं जाते ।''

''परन्तु क्यों ?'' महिला ने पूछा ।

उनमें से एक संत ने कहा–''मेरा नाम धन है'' फिर दूसरे संतों की ओर इशारा करके कहा, ''इन दोनों के नाम सफलता और प्रेम हैं । हममें से कोई एक ही भीतर आ सकता है । आप घर के अन्य सदस्यों से मिलकर तय कर लें कि भीतर किसे निमंत्रित करना है ।'' महिला ने भीतर जाकर अपने पति को यह सब बताया । उसका पति बहुत प्रसन्न हो गया और बोला–''यदि ऐसा है तो हमें धन को आमंत्रित करना चाहिये । हमारा घर खुशियों से भर जाएगा ।'' लेकिन उसकी पत्नी ने कहा–''मुझे लगता है कि हमें सफलता को आमंत्रित करना चाहिए ।'' उनकी बेटी दूसरे कमरे में यह सब सुन रही थी । वह उनके पास आई और बोली, ''मुझे लगता है कि हमें प्रेम को आमंत्रित करना चाहिए । प्रेम से बढ़कर कुछ भी नहीं है ।'' ''तुम ठीक कहती हो, हमें प्रेम को ही बुलाना चाहिए ।'' उसके माता-पिता ने कहा ।

महिला घर के बाहर गई और उसने संतों से पूछा–''आपमें से जिनका नाम प्रेम है, वे कृपया घर में प्रवेश कर भोजन ग्रहण करें ।''

प्रेम घर की ओर बढ़ चले । बाकी दो संत भी उनके पीछे चलने लगे ।

महिला ने आश्चर्य से उन दोनों से पूछा–''मैंने तो केवल प्रेम को आमंत्रित किया था । आप लोग भीतर क्यों जा रहे हैं ? उनमें से एक ने कहा–''यदि आपने धन और सफलता में से किसी एक को आमंत्रित किया होता तो केवल वही भीतर जाता । आपने प्रेम को आमंत्रित किया है । प्रेम कभी अकेला नहीं जाता । प्रेम जहाँ-जहाँ जाता है, धन और सफलता उसके पीछे जाते हैं ।''

33. वही करें जो स्वयं को सही लगे

पिता-पुत्र एक दिन एक घोड़ा लेकर कहीं जा रहे थे । रास्ते में

किसी ने देखा और कहा, ''कितने मूर्ख हैं, घोड़ा साथ होते हुए भी पैदल चल रहे हैं।'' यह सुनकर वे दोनों घोड़े पर बैठकर चलने लगे। अभी थोड़ा आगे गए थे कि कुछ लोगों ने कहा, ''कितने निर्दयी हैं जो दोनों घोड़े पर चढ़े बैठे हैं।'' यह सुनकर पुत्र उतर गया और पिता घोड़े पर बैठा रहा। थोड़ी दूर और चले तो कुछ लोगों ने फिर ताना कसा, ''कितना निर्दयी पिता है, स्वयं तो बैठा है और पुत्र को पैदल चला रहा है।'' सुनकर पिता घोड़े से उतर गया और पुत्र को घोड़े पर बैठा दिया। फिर आगे चले तो कुछ लोग पुत्र को कोसने लगे।

कहने का अर्थ यह है कि आप जो करो अथवा जो हो रहा है, सामने वाला उसमें दोष ही ढूंढता रहता है। हम अपनी ज़िन्दगी में हर छोटे से छोटे काम में भी वही करते हैं जिससे हमें दूसरों की तारीफ मिले। अपनी पसंद और नापसंद तो हम बाद में ही तय किया करते हैं। ऐसे में हम अपनी वास्तविकता भूल ही जाते हैं। प्रायः हर काम केवल इस बात पर निर्भर करता है कि ऐसा करेंगे तो लोग क्या कहेंगे। लोगों की हमें इतनी परवाह बनी रहती है कि हम स्वयं को दुःख में रखकर भी वही करते हैं जो दूसरे लोगों को खुश रख सके।

सच तो यह है कि हम चाहे जो भी काम करें वह कैसा भी क्यों न हो, अपनी खुशी से करें तभी मन को शान्ति मिलेगी, अन्यथा दुःख ही मिलेगा। 'लोग क्या कहेंगे' के डर से जो ऊपर उठ जाता है उसके पास अगर कुछ नहीं भी है तो भी बहुत कुछ है। ऐसे तो कभी खुशी नहीं मिल सकती। संसार में कहने वालों की कमी नहीं है। हमें अपना हर काम अपनी संतुष्टि के लिए ही करना चाहिये। करें वही जो स्वयं को उचित लगे। जो अपने व परिवार और समाज के हित में हो।

34. सबसे बड़ा धर्मात्मा

एक राजा के 4 बेटे थे। एक बार राजा ने उनसे कहा, ''जाओ, किसी धर्मात्मा को खोज लाओ। जो सबसे बड़े धर्मात्मा को लाएगा, उसी को गद्दी पर बिठा दूँगा।'' चारों लड़के चले गए। कुछ दिनों बाद बड़ा लड़का लौटा। वह अपने साथ एक सेठ लाया था। उसने कहा, ''सेठ जी ने मंदिर बनवाए हैं। तालाब खुदवाए हैं और साधु-संतों को भोजन कराते हैं। राजा ने उनका सत्कार किया। वह चले गए। दूसरा लड़का एक दुबले-पतले ब्राह्मण को लाया और बोला, ''इन्होंने चारों धामों की पैदल यात्रा की है।'' राजा ने उन्हें दक्षिणा देकर विदा किया। तीसरा लड़का एक साधु को लेकर आया। उनकी प्रशंसा में उसने कहा, '' यह बड़े तपस्वी हैं। 7 दिनों में एक बार खाते हैं और अपना अधिक समय ईश्वर भक्ति में ही बिताते हैं।'' राजा ने उनका भी स्वागत किया। चौथा लड़का जब लौटा तो अपने साथ एक मैले-कुचैले कपड़े पहने एक देहाती को लाया और राजा से बोला, ''यह एक कुत्ते के घाव धो रहे थे। मैं इन्हें नहीं जानता। आप ही पूछ लीजिए कि यह धर्मात्मा हैं या नहीं।'' राजा ने देहाती से पूछा, क्या तुम धर्म-कर्म करते हो?'' देहाती बोला, ''मैं तो अनपढ़ हूँ धर्म-कर्म क्या होता है, नहीं जानता। कोई बीमार होता है तो सेवा कर देता हूँ। यही सबसे बड़ा धर्मात्मा है। सबसे बड़ा धर्म बिना किसी स्वार्थ के असहायों की सेवा करना है।'' राजा ने अपने चौथे लड़के को गद्दी पर बैठा दिया।

35. श्रम और स्वाध्याय

एक राजा था। उसके खजाने में अपार धन था, फिर भी उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। कई वैद्यों ने उसका इलाज किया, फिर भी कोई लाभ नहीं हुआ। यह बात प्रजा में फैल गई। तब एक बूढ़े ने राजा के पास आकर उसका इलाज करने की इच्छा प्रकट की। राजा से अनुमति पाकर वह बोला, ''आप किसी सुखी

मनुष्य का कुर्ता पहनिए, स्वस्थ हो जाएंगे ।

बूढ़े की बात सुनकर सभी हँसने लगे लेकिन राजा ने सोचा कि इतने सारे इलाज किए हैं तो एक और सही । राजा के सेवकों ने सुखी मनुष्य की बहुत खोज की लेकिन उन्हें पूर्ण सुखी कोई नहीं मिला । हर किसी को किसी न किसी बात का दुःख था । अब राजा स्वयं सुखी मनुष्य की खोज में निकल पड़ा । वह एक खेत में जा पहुँचा । तपती दोपहर में एक किसान अपने काम में लगा हुआ था ।

राजा ने उससे पूछा, ''क्यों जी, तुम सुखी हो? किसान की आँखें चमक उठीं । वह मुस्कुरा कर बोला, ''ईश्वर की कृपा से मुझे कोई दुःख नहीं है ।'' यह सुनकर राजा खुश हो गया । उसने सोचा कि किसान का कुर्ता मांग लिया जाए परन्तु तभी उसका ध्यान इस बात पर गया कि किसान केवल धोती पहने हुए है और उसकी सारी देह पसीने से तर है । राजा समझ गया कि श्रम करने के कारण ही यह किसान सुखी है । उसने आराम-चैन छोड़कर परिश्रम करने का संकल्प लिया । थाड़े ही दिनों में राजा की बीमारी दूर हो गई ।

36. सबसे बड़ा गुरु

गुरु द्रोणाचार्य पांडवों और कौरवों के गुरु थे, उन्हें धनुर्विद्या का ज्ञान देते थे । एक दिन एकलव्य जोकि एक ग़रीब शूद्र परिवार से था । द्रोणाचार्य के पास गया और बोला कि गुरुदेव मुझे भी धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त करना है आपसे अनुरोध है कि मुझे भी अपना शिष्य बनाकर धनुर्विद्या का ज्ञान प्रदान करें ।

परन्तु द्रोणाचार्य ने एकलव्य को अपनी विवशता बताई और कहा कि वह किसी और गुरु से शिक्षा प्राप्त कर ले । यह सुनकर एकलव्य वहाँ से चला गया । इस घटना के बहुत दिनों बाद अर्जुन और द्रोणाचार्य शिकार के लिए जंगल की ओर गए । उनके साथ एक कुत्ता भी गया हुआ था । कुत्ता अचानक से दौड़ते हुए एक

जगह पर जाकर भौंकने लगा, वह काफी देर तब भौंकता रहा और फिर अचानक ही उसने भौंकना बंद कर दिया। अर्जुन और गुरुदेव को यह कुछ अजीब लगा और वे उस स्थान की ओर बढ़ गए जहाँ से कुत्ते के भौंकने की आवाज आ रही थी। उन्होंने वहाँ जाकर जो देखा वह एक अविश्वसनीय घटना थी।

किसी ने कुत्ते को बिना चोट पहुँचाए उसका मुँह तीरों के माध्यम से बंद कर दिया था और वह चाह कर भी नहीं भौंक सकता था। वह देखकर द्रोणाचार्य चौंक गए और सोचने लगे कि इतनी कुशलता से तीर चलाने का ज्ञान तो मैंने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को भी नहीं दिया है और न ही किसी अन्य को दिया है। तभी सामने से एकलव्य अपने हाथ में तीर-कमान पकड़े आ रहा था। द्रोणाचार्य ने एकलव्य से पूछा, ''बेटा तुमने यह सब कैसे कर दिखाया।''

तब एकलव्य ने कहा, ''गुरुदेव मैंने यहाँ आपकी मूर्ति बनाई है और रोज इसकी वंदना करने के पश्चात् मैं इसके समक्ष कड़ा अभ्यास किया करता हूँ और इसी अभ्यास के चलते मैं आज आपके सामने धनुष पकड़ने के लायक बना हूँ।'' गुरुदेव ने कहा, ''तुम धन्य हो! तुम्हारे अभ्यास ने ही तुम्हें इतना श्रेष्ठ धर्नुधर बनाया है। आज में समझ गया कि अभ्यास ही सबसे बड़ा गुरु है।''

37. आशा मत छोड़िए

रात का समय था। चारों तरफ सन्नाटा पसरा हुआ था। नजदीक ही एक कमरे में 4 मोमबत्तियाँ जल रही थीं। एकांत पाकर आज वे एक-दूसरे से दिल की बात कर रही थीं। पहली मोमबत्ती बोली, ''मैं शान्ति हूँ परन्तु मुझे लगता है अब इस दुनियाँ को मेरी जरूरत नहीं है, हर तरफ आपाधापी और लूटमार मची हुई है, मैं यहाँ अब और नहीं रह सकती।'' और ऐसा कहते हुए कुछ देर में

वह मोमबत्ती बुझ गई । दूसरी मोमबत्ती बोली, ''मैं विश्वास हूँ और मुझे लगता है कि झूठ और फरेब के बीच मेरी भी यहाँ कोई जरूरत नहीं है, मैं भी यहाँ से जा रही हूँ ।'' और दूसरी मोमबत्ती भी बुझ गई ।

तीसरी मोमबत्ती भी दुःखी होते हुए बोली, 'मैं प्रेम हूँ, मेरे पास जलते रहने की ताकत है परन्तु आज हर कोई इतना व्यस्त है कि मेरे लिए किसी के पास वक्त ही नहीं, दूसरों से तो दूर लोग अपनों से भी प्रेम करना भूलते जा रहे हैं, मैं ये सब और नहीं सह सकती, मैं भी इस दुनिया से जा रही हूँ ।'' और ऐसा कहते हुए तीसरी मोमबत्ती भी बुझ गई । वह अभी बुझी ही थी कि एक मासूम बच्चा उस कमरे में दाखिल हुआ । मोमबत्तियों को बुझा हुआ देखकर वह घबरा गया, उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे और रूँआंसा होते हुए बोला, अरे तुम मोमबत्तियाँ जल क्यों नहीं रहीं, तुम्हें तो अंत तक जलना है । तुम इस तरह बीच में हमें कैसे छोड़ कर जा सकती हो?'' तभी चौथी मोमबत्ती बोली, ''प्यारे बच्चे घबराओ नहीं, मैं आशा हूँ और जब तक मैं जल रही हूँ हम शेष मोमबत्तियों को फिर से जला सकते हैं ।''

यह सुनकर बच्चे की आँखें चमक उठीं और उसने आशा के बल पर शांति, विश्वास और प्रेम को फिर से प्रकाशित कर दिया । जब सब कुछ बुरा होता दिखे, चारों तरफ अंधकार ही अंधकार नजर आए, अपने भी पराए लगने लगें तो भी आशा मत छोड़िए क्योंकि इसमें इतनी शक्ति है कि यह हर खोई हुई चीज आपको वापिस दिला सकती है । अपनी आशा की मोमबत्ती जलाए रखिए, बस अगर यह जलती रहेगी तो आप किसी भी और मोमबत्ती को प्रकाशित कर सकते हैं ।

38. तुम कौन हो?

यूनान के सबसे धनी व्यक्ति एक बार अपने समय के सबसे बड़े विद्वान् सुकरात से मिलने गया। उसके पहुँचने पर सुकरात न जब उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया तो उसने कहा, ''क्या आप जानते हैं मैं कौन हूँ?'' सुकरात ने कहा, ''जरा यहाँ बैठो, आओ समझने की कोशिश करें कि तुम कौन हो?''

सुकरात ने दुनियाँ का नक्शा उसके सामने रखा और उस धनी व्यक्ति से कहा, ''बताओ तो जरा, इसमें एथेंस कहाँ है?'' वह बोला, ''दुनियाँ के नक्शे में एथेंस तो एक बिन्दु भर है।'' उसने एथेंस पर उंगली रखी और कहा, ''यह है एथेंस।'' सुकरात ने पूछा, ''इस एथेंस में तुम्हारा महल कहाँ है?'' वहाँ तो बिन्दु ही था, वह उसमें महल कहाँ से बताए। फिर सुकरात ने कहा, ''अच्छा बताओ, उस महल में तुम कहाँ हो?''

यह नक्शा तो पृथ्वी का है। अनन्त पृथ्वियाँ हैं, अनन्त सूर्य हैं, तुम हो कौन ? कहते हैं, जब वह जाने लगा तो सुकरात ने वह नक्शा यह कहकर उसे भेंट कर दिया कि इसे सदा अपने पास रखना और जब भी अभिमान तुम्हें जकड़े, यह नक्शा खोलकर देख लेना कि कहाँ है एथेंस, कहाँ है मेरा महल? और फिर मैं कौन हूँ? बस अपने आपसे पूछ लेना।

वह धनी व्यक्ति सिर झुका कर खड़ा हो गया तो सुकरात ने कहा, ''अब तुम समझ गए होंगे कि वास्तव में हम कुछ नहीं हैं लेकिन कुछ होने की अकड़ हमें पकड़े हुए है। यही हमारा दुःख है, यही हमारा नरक है। जिस दिन हम जागेंगे, चारों ओर देखेंगे तो कहेंगे कि इस विशाल ब्रह्मांड में हम कुछ नहीं हैं। तभी हमें परमात्मा की विराटता का वास्तविक एहसास होगा। तभी हमारे मन में उसके प्रति समर्पण का भाव जागेगा। अन्यथा अहंकार हमें जीवन में इसी

प्रकार भटकाता रहेगा। इसलिए जागो और अपना जीवन सफल करो। उस धनी व्यक्ति ने उस दिन से घमंड करना छोड़ दिया।

39. मरण का स्मरण रहे

संत एकनाथ जी की एक कथा है। एक आदमी उनके पास आया और उसने कहा महात्मा आप कितने शांत हैं कितने सज्जन हैं। हम लाख बार प्रयत्न करते हैं परन्तु आप जैसा नहीं हो पाते। सब कुछ सुनने पर एकनाथ जी ने कहा, मेरा तो ठीक है, किन्तु आप के यहाँ आते ही एक बात मेरी समझ में आई। समझ में नहीं आता कि कहूँ या न कहूँ। आज से आठ दिन के बाद आपकी मृत्यु है। यह सुनकर वह आदमी बेचैन हो गया और अपने घर से निकल गया। आठ-दस दिन गुजर गये। उसे मृत्यु नहीं मिली। तब क्रोधित होकर वह एकनाथ जी के पास आया। उसने कहा आपने बेकार ही मुझे डरा दिया था। आपने झूठ क्यों कहा?

तब एकनाथ जी ने कहा खैर वह सब रहने दो। एक बात कहो। इन आठ दिनों में तुमने कितनों के साथ झगड़ा किया। कितनों को ठगा। तब उसने कहा छोड़िये भी। हर पल तो आंखों के सामने मौत दीख रही थी।

इसलिए हर किसी को कह रहा था कि चार दिन ही जीना है चैन से रहेंगे। किसी का दिल दुःखाने की हिम्मत नहीं थी। किसी भी चीज की चाहत बाकी नहीं रही। सोचता कि इन सबकी क्या जरूरत। यह सब साथ तो आने वाला ही नहीं है। सुनकर हँसते हुए एकनाथ जी ने कहा जो विचार इन आठ दिनों में आपके मन में उभरो वही विचार सदा मेरे मन में रहते हैं। मरण का स्मरण हो तो स्वभाव में परिवर्तन होता है। यही तो फर्क है आप में और मुझ में।

आम तौर पर संत तथा सामान्य लोगों का व्यवहार एक जैसा होता है। किन्तु दोनों के दृष्टिकोण में जमीन-आसमान का अंतर

होता है । आम लोग स्थूलता को स्पर्श करते हैं, अंतरंग नहीं देखते । संत अंतरंग को स्पर्श करते हैं, स्थूलता नहीं देखते । संतों को मरण सदा याद रहता है और हम मरण की कल्पना मात्र से दूर भागते हैं ।

40. कर्म के प्रति समर्पण भाव

एक व्यक्ति किसी नए मार्ग से गुजर रहा था । रास्ते में उसने देखा कि एक जगह मन्दिर का निर्माण किया जा रहा है और वहाँ पर कई मजदूर काम पर लगे हैं । वह थोड़ी देर वहीं रुकते हुए मंदिर के निर्माण कार्य को देखने लगा तभी उसने देखा कि एक मजदूर गुस्से से भुनभुनाते हुए पत्थरों पर जोर-जोर से प्रहार कर रहा है । उसे यह देखकर अजीब लगा । उसने उस मजदूर के पास जाकर पूछा, ''भाई, यह क्या कर रहे हो ?''

मजदूर उसके प्रश्न पर खीझते हुए बोला, ''दिखाई नहीं देता, पत्थर तोड़ रहा हूँ । जब भाग्य में पत्थर तोड़ना लिखा है तो इन्सान वही तो करेगा । न जाने मेरी तक़दीर कब बदलेगी ?'' यह कहकर वह पुनः उसी भाव से पत्थर तोड़ने में लग गया । थोड़ी दूरी पर एक और मजदूर भी इसी काम में लगा था । उसके पास जाकर भी उस आदमी ने यही प्रश्न पूछा । इस पर वह मजदूर बहुत और निराश भाव से बोला, ''क्या करें भैया, रोजी-रोटी कमाने के लिए पत्थर को तोड़ना पड़ता है, सो वही कर रहा हूँ ।'' तभी उस आदमी की नजर वहाँ काम कर रहे एक अन्य मजदूर पर पड़ी, जो कुछ गुनगुनाते हुए प्रसन्न भाव से अपने काम में लगा था । उस आदमी ने उसके पास जाकर पूछा—''क्या कर रहे हो ?'' यहाँ भगवान् का मन्दिर बन रहा है । मेरे अहोभाग्य मुझे भी यहाँ काम करने का मौका मिला । इसी बहाने मेरे श्रम की चार बूंदें भी प्रभु के मंदिर की स्थापना में काम आ जाएंगी ।''

वह व्यक्ति उसका उत्तर सुनकर खुश हो गया । देखा जाए

तो तीनों मजदूर एक ही काम कर रहे थे । परन्तु उन का उस काम के प्रति दृष्टिकोण अलग था, जिससे उनके काम मे भी फर्क नजर आ रहा था । जीवन में कुछ लोग पहले मजदूर की तरह होते हैं । जो मनचाहा काम न मिलने पर मजबूरीवश दूसरा काम निरुत्साह भाव से करते हुए अपनी किस्मत को कोसते रहते हैं ।

कुछ दूसरे मजदूर की तरह होते हैं, जो केवल इसे अपनी आजीविका से जोड़ते हुए यंत्रवत तरीके से काम करते हैं । वहीं कुछ लोग तीसरे मजदूर की तरह अपने कर्म को अपना सौभाग्य और पूजा मानकर पूरे समर्पण भाव से करते हुए जीवन में निरंतर कामयाबी हासिल करते हैं ।

41. श्रेष्ठ संत

संत पुरन्दर की सादगी और निर्लिप्तता की बड़ी चर्चा थी । विजयानगरम् के राजा कृष्णदेव राय ने उनकी परीक्षा लेनी चाही । एक दिन उन्हें भिक्षा हेतु बुलाया व उन्हें चावल दिए । प्रार्थना की कि रोज इसी तरह वे आ जाया करें । संत तो संत हृदय होते हैं वे रोज आने लगे । छोटे-छोटे हीरे-माणिक्य उन चावलों में मिले हैं, यह उनकी पत्नी सरस्वती ने देखा । कहा, ''पहले दिन तो सब ठीक था । अब कल से इसमें न जाने क्या कंकड़ आदि मिले हैं ।'' पति ने देखा, मुस्कराए और दोनों ने उन्हें कचरे के ढेर के पास फेंक दिया । सप्ताह भर भिक्षा लाने, हीरे मिश्रित होने व कूड़े के ढेर पर फैंकने का सिलसिला चलता रहा । एक दिन राजा व मंत्री स्वयं अपनी आँखों से देखने संत की कुटिया पर पहुँचे । देखा सरस्वती देवी चावल बीन रही हैं । हीरे फैंकती जा रही है । कृष्णदेव राय वेश बदले हुए थे । पूछा, ''बहन ! यह क्या कर रही है ।'' वे बोलीं, ''कुछ दिनों से कोई गृहस्थ इन्हें भिक्षा में कंकड़ दे देता है । मैं बीनती

हूँ। भिक्षा देने वाले का मन न दुःखे इसलिये ये भी भिक्षा ले आते हैं।'' उन्होंने कहा, ''यह कंकड़ नहीं, हीरे हैं।'' वे बोलीं, ''आपके लिए होंगे, हमारे जीवन का आधार तो भगवान् है। आप इन्हें बटोर ले जाइये।'' नतमस्तक होकर राजा वहाँ से गए। उन्हें लगा कि पुरंदर को संतश्रेष्ठ ऐसे ही नहीं कहा जाता।

42. शत्रु के लिए सर्वस्व त्यागने वाले महर्षि दधीचि

लोक कल्याण के लिए आत्म त्याग करने वालों में महर्षि दधीचि का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। इनकी माता का नाम शांति तथा पिता का नाम अथर्वा ऋषि था। ये तपस्या और पवित्रता की मूर्ति थे। अटूट शिव भक्ति और वैराग्य में इनकी जन्म से ही निष्ठा थी।

एक बार महर्षि दधीचि बड़ी ही कठोर तपस्या कर रहे थे। इनकी अपूर्व तपस्या के तेज से तीनों लोक आलोकित हो गए और इन्द्र का सिंहासन हिलने लगा। इन्द्र को लगा कि दधीचि अपनी कठोर तपस्या के द्वारा इन्द्र का पद छीनना चाहता है। इसलिए उन्होंने महर्षि की तपस्या को खंडित करने के उद्देश्य से परम रूपवती अलम्बुषा अप्सरा के साथ कामदेव को भेजा। अलम्बुषा और कामदेव के अथक प्रयत्न के बाद भी महर्षि अविचल रहे और अंत में विफल मनोरथ होकर दोनों इन्द्र के पास लौट गए।

कामदेव और अप्सरा के निराश होकर लौटने के बाद इन्द्र ने महर्षि की हत्या करने का निश्चय किया और देव सेना को लेकर महर्षि दधीचि के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर देवताओं ने शांत और समाधिस्थ महर्षि पर अपने कठोर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करना आरम्भ कर दिया। देवताओं के द्वारा चलाए गए अस्त्र-शस्त्र महर्षि की तपस्या के अभेद्य दुर्ग को न भेद सके और महर्षि अविचल

समाधिस्थ बैठे रहे। इन्द्र के अस्त्र-शस्त्र भी उनके सामने व्यर्थ हो गए। हार कर देवराज स्वर्ग लौट आए।

एक बार देवराज इन्द्र अपनी सभा में बैठे थे। उसी समय देव गुरु बृहस्पति आ गये। अहंकारवश गुरु बृहस्पति के सम्मान में इन्द्र उठ कर खड़े नहीं हुए। बृहस्पति ने इसे अपना अपमान समझा और देवताओं को छोड़कर अन्यत्र चले गए। देवताओं को विश्वरूप को अपना पुरोहित बना कर काम चलाना पड़ा। परन्तु विश्वरूप कभी-कभी देवताओं से छिपकर असुरों को भी यज्ञ-भाग दे दिया करता था। इन्द्र ने उस पर कुपित होकर उसका सिर काट लिया। विश्वरूप त्वष्टा ऋषि का पुत्र था। उन्होंने क्रोधित होकर इन्द्र को मारने के उद्देश्य से महाबली वृत्रासुर को उत्पन्न किया। वृत्रासुर के भय से इन्द्र अपना सिंहासन छोड़ कर देवताओं के साथ मारे-मारे फिरने लगे।

ब्रह्मा जी की सलाह से देवराज इन्द्र महर्षि दधीचि के पास उनकी हड्डियां मांगने के लिए गए। उन्होंने महर्षि से प्रार्थना करते हुए कहा, ''प्रभो! त्रैलोक्य की मंगल कामना हेतु आप अपनी हड्डियां हमें दान दे दीजिए।

महर्षि दधीचि ने कहा, ''देवराज! यद्यपि अपना शरीर सबको प्रिय होता है, किन्तु लोकहित के लिए मैं तुम्हें अपना शरीर प्रदान करता हूँ।''

महर्षि दधीचि की हड्डियों से वज्र का निर्माण हुआ और वृत्रासुर मारा गया। इस प्रकार एक महान परोपकारी ऋषि के अपूर्व त्याग से देवराज इन्द्र बच गए और तीनों लोक सुखी हो गए। अपने अपकारी शत्रु के भी हित के लिए सर्वस्व त्याग करने वाले महर्षि दधीचि जैसा उदाहरण संसार में अन्यत्र मिलना कठिन है।

43. अपने दोषों को सुधारें

किसी नगर में एक निर्धन व्यक्ति रहता था। वह सदा दुःखी

रहता और उसे इस बात की शिकायत रहती कि भगवान् ने इतनी पूजा-पाठ के बाद भी उसे कुछ नहीं दिया । वह भगवान् की मूरत के समक्ष प्रायः विनती करता, ''प्रभु ! आखिर मेरी सेवा में कहां कमी है । जो आप मेरी सुध नहीं लेते । मैं अपने आस-पास देखता हूँ तो मुझे सभी लोग सुखी नजर आते हैं । फिर भला मैं ही अकेला दुःखी क्यों हूँ ? क्या मेरी सारी ज़िन्दगी इसी तरह कष्ट और दुःख में कट जाएगी ?''

आखिरकार एक दिन भगवान् ! को उस पर दया आ गई । वे उसके सामने प्रकट हुए और बोले, ''वत्स ! तुम मुझसे क्या चाहते हो ?'' वह व्यक्ति बोला, ''प्रभु ! दूसरों की तरह मैं सुख और उन्नति चाहता हूँ ।'' यह सुनकर भगवान् ने कहा ?, ''वत्स, व्यक्ति की सुख-शान्ति और उन्नति उसके कर्मों व व्यवहार पर निर्भर है । तुम्हें लगता है कि तुम्हारे पड़ोसी सुखी हैं और तुम दुःखी, तो लो मैं तुम्हें दो थैले दे देता हूँ । इनमें से एक थैले में तुम्हारे पड़ोसियों की बुराइयाँ भरी हैं । उसे तुम पीठ पर लाद लेना और सदैव उसका मुख बंद रखना, न खुद देखना और न दूसरों को दिखाना । दूसरे थैले में तुम्हारे दोष भरे हैं । उसे अपने सामने की ओर लटका लो और बार-बार खोलकर देखते रहना । इससे तुम्हें अपने दोष दूर करने में सहायता मिलेगी ।''

यह कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये । व्यक्ति ने दोनों थैले उठाए और वापस चल पड़ा लेकिन उससे एक भूल हो गई । उसने अपनी बुराइयों का थैला पीठ पर लाद लिया और उसका मुंह कसकर बंद कर दिया तथा अपने पड़ोसियों की बुराइयों से भरा थैला सामने की ओर लटका लिया । वह उसका मुंह खोलकर बार-बार देखता रहता और दूसरों को भी दिखाता रहता । इससे उसने जो वरदान मांगे थे, वे भी उलटे हो गये ।

वह व्यक्ति उन्नति की अपेक्षा अवनति करने लगा और

उसकी अशांति व दुःख भी बढ़ गए। दूसरों की बुराइयां दिखाने के कारण से सब लोग उसे बुरा बताने लगे। यदि व्यक्ति अपनी यह भूल सुधार लेता तो उसकी उन्नति होती और सुख-शांति मिलती। उन्नति का मार्ग यही है कि हम दूसरों के दोष देखने के सिवाय अपने दोषों को देखते हुए सुधार का लगातार प्रयत्न करते रहें।

44. पहले हम स्वयं को परखें

एक महात्मा बहुत ज्ञानी और अंतर्मुखी थे। अपनी साधना में ही लीन रहते थे। एक बार एक लड़का उनके पास आया और कहा, ''हे महात्मा आप मुझे अपना चेला बना लीजिए।'' बुढापा आ रहा है, यह सोचकर उन्होंने उसे चेला बना लिया। चेला बहुत चंचल प्रवृत्ति का था। ध्यान में उसका मन नहीं लगता था। गुरु ने कई बार उसे समझाने की चेष्टा की पर सफलता नहीं मिली। लड़का बहुत ही आलसी प्रवृत्ति का भी था। उसने एक दिन गुरुदेव से कहा, ''मुझे कोई चमत्कार सिखा दें।'' गुरु ने कहा, ''वत्स! चमत्कार कोई काम की वस्तु नहीं है।'' परन्तु चेला अपनी बात पर अड़ा रहा।

बालहठ के सामने गुरुजी को झुकना पड़ा। उन्होंने अपने झोले में से एक पारदर्शी डंडा निकाला और चेले के हाथ में उसे थमाते हुए कहा, ''यह लो, इस चमत्कारी डंडे को तुम जिस भी व्यक्ति के सामने करोगे उसके दोष इसमें प्रकट हो जाएंगे।'' चेला चमत्कारी डंडे को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। गुरु ने चेले के हाथ में डंडा क्या थमाया, मानो बंदर के हाथ में तलवार थमा दी। कोई भी व्यक्ति उस आश्रम में आता, चेला हर आगंतुक के सामने उस डंडे को घुमा देता। फलतः उसकी कमजोरियां उसमें प्रकट हो जातीं और चेला उनका दुष्प्रचार आरम्भ कर देता।

गुरु जी सारी बात समझ गए। एक दिन उन्होंने चेले से कहा,

''एक बार डंडा अपनी ओर भी घुमाकर देख लो, इससे स्वयं का परीक्षण हो जाएगा कि आश्रम में आकर अपनी साधना से तुमने कितनी प्रगति की है।'' चेले को बात जंची, उसने फौरन डंडा अपनी ओर किया। मगर देखा कि उसके भीतर तो दोषों का अंबार लगा है। शर्म से उसका चेहरा लटक गया। वह तत्काल गुरु के चरणों में गिर पड़ा और अपनी भूल की क्षमा मांगते हुए बोला, ''आज से मैं दूसरों के दोष देखने की भूल नहीं करूँगा, स्वयं को सुधारूंगा।

तात्पर्य यह कि अगर इंसान दूसरों के दोष देखने की अपेक्षा अपने दोष देखे तो ज़िदगी में काफी आगे बढ़ सकता है। वर्तमान में हर इंसान दूसरों के दोष देखने में अपना अनमोल समय बर्बाद कर देता है अगर वह इतना समय अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वयं को परखने में खर्च करे तो वह जीवन में बहुत अधिक प्रगति कर सकता है।

45. अफलातून की सीख

यूनानी दार्शनिक अफलातून के पास हर दिन कई विद्वानों का जमावड़ा लगा रहता था। सभी लोग उनसे कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करके ही जाया करते थे लेकिन अफलातून स्वयं को कभी ज्ञानी नहीं मानते थे क्योंकि उनका मानना था कि इंसान ज्ञानी कैसे हो सकता है जबकि हमेशा वह सीखता ही रहता है।

एक दिन उनके एक मित्र ने उनसे कहा, ''आपके पास दुनियाँ भर के विद्वान् ज्ञान लेने आते हैं और वे लोग आपसे बातें करते हुए अपना जीवन धन्य समझते हैं लेकिन आपकी एक बात मुझे आज तक समझ नहीं आई।'' इस पर अफलातून बोले कि तुम्हें किसी बात की शंका है, जाहिर तो करो जो पता चले।

मित्र ने कहा कि आप स्वयं बड़े विद्वान् हैं लेकिन फिर भी मैंने देखा है कि आप हर समय दूसरों से शिक्षा लेने को तत्पर रहते हैं, वह भी बड़े उत्साह और उमंग के साथ। इससे बड़ी बात है कि आपको साधारण व्यक्ति से भी सीखने में कोई परेशानी नहीं होती। आप उससे भी सीखने को तत्पर रहते हैं। आपको भला सीखने की जरूरत क्या है, कहीं आप लोगों को खुश करने के लिए तो उनसे सीखने का दिखावा नहीं करते हैं?

अफलातून जोर-जोर से हँसने लगे। मित्र ने पूछा ऐसा क्यों तो अफलातून ने उत्तर दिया कि इंसान अपनी पूरी ज़िन्दगी में भी कुछ पूरा नहीं सीख सकता। सदा कुछ न कुछ अधूरा ही रहता है और फिर हर इंसान के पास कुछ न कुछ ऐसा जरूर है जो दूसरों के पास नहीं है। इसलिए हर किसी को हर किसी से सीखते रहना चाहिए और फिर हर बात व अनुभव किताबों में तो नहीं मिलते क्योंकि बहुत कुछ ऐसा है जो लिखा नहीं गया है जबकि वास्तविकता में रहकर और लोगों से सीखते रहने की आदत आपको पूरा नहीं पूर्णता के करीब जरूर ले जाती है। यही ज़िन्दगी का सार है।

46. जरूरतमंद की सहायता करने से मिलता है तीर्थयात्रा का फल

एक साधु की तीर्थयात्रा की इच्छा हुई। वह दिन रात पैसा इकट्ठा करने की जुगत में लगे रहते। एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि यदि किसी व्यक्ति में परोपकार की भावना हो तो घर बैठे ही उसे तीर्थयात्रा का पुण्य मिल सकता है, जैसे कि हिमाचल के एक गाँव में जूता गांठकर आजीविका चला रहे श्यामु भक्त को।

नींद खुलने पर साधु ने श्यामु भक्त से मिलने की ठानी। खोजते-खोजते वह श्यामु भक्त के घर पहुँचे और उनसे तीर्थयात्रा

न करने का कारण पूछा। श्यामु ने बताया कि तीर्थयात्रा पर जाने की तो मन में तीव्र इच्छा थी। कुछ पैसे भी जमा कर लिए थे लेकिन एक घटना ऐसी घटी कि तीर्थयात्रा पर जाने का विचार त्यागना पड़ा।

उसकी पत्नी गर्भवती थी। एक दिन उसे पड़ोस से मेथी के साग की सुगंध आई। उसे यह साग खाने की इच्छा हुई। उसने पड़ोसी के घर जाकर उनसे पत्नी के लिए थोड़ा साग मांगा। पड़ोसी संकुचाते हुए बोला कि 4 दिन से बच्चे भूखे थे, इसलिए आज ही श्मशान से मेथी की पत्तियां तोड़कर साग बनाया है। उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर उसने वे रुपये उसे दे दिये जो उसने व उसकी पत्नी ने पेट काटकर तीर्थयात्रा के लिए जोड़े थे।

यह सुन साधु के जीवन की दिशा ही बदल गई। किसी जरूरतमंद की मदद करने से तीर्थयात्रा का वह पुण्य मिल जाता है, जो चारों धाम की यात्रा से भी प्राप्त नहीं होता।

इस संसार में हम अद्वितीय हैं इसलिए अपनी तुलना किसी से न करें। अपनी निंदा से विचलित न हों। अपितु अपनी कमजोरियां जानकर उन्हें दूर करने का प्रयास करें। अपनी समस्याओं के समाधान का क्रम तय करें। जो पहले जरूरी है, उसे उसी क्रम से सुलझाएं। अपनी छोटी-छोटी चिंताओं का रोना छोड़कर अन्य लोगों का सहयोग करें। उनकी सहायता करना तीर्थाटन से किसी मायने में कम नहीं।

प्रेम, सहानुभूति और क्षमा-भाव मानवीय भावों में सबसे महान् हैं। कुछ परिस्थितियां अत्यंत विषम होती है। ऐसी स्थिति में यह ध्यान रखें कि परिवर्तन जगत का शाश्वत नियम है। सुख-दुःख तथा रोग-शोक हमारे द्वारा किये गये कर्मों का प्रतिफल है। इनके लिए कोई अन्य नहीं, हम ही जिम्मेदार हैं। अतः इन्हें प्रसन्नतापूर्वक

ग्रहण करें।

47. त्याग में ही सुख है

एक संत और उसका एक शिष्य दोनों ही धर्म प्रचार करने के लिए गाँव-गाँव घूमते थे। वे एक गाँव में पहुँचे और एक कुटिया बनाकर उसमें रहने लगे। नगरवासी उनका बहुत सम्मान करते और उन्हें भोजन इत्यादि देने के साथ-साथ पर्याप्त दान-दक्षिणा भी दे दिया करते थे। एक दिन अचानक संत शिष्य से कहने लगे, ''बेटा, यहाँ बहुत दिन रह लिया। चलो, अब कहीं और रहा जाए।''

शिष्य ने पूछा लिया, ''क्यों गुरुदेव? यहाँ तो बहुत चढ़ावा आता है। क्यों न कुछ दिन बाद चलें तब तक और चढ़ावा इकट्ठा हो जाएगा? संत ने उत्तर दिया, ''बेटा, हमें धन और वस्तुओं के संग्रह से क्या लेना-देना, हमें तो त्याग के रास्ते पर चलना है।'' गुरु की आज्ञा सुनकर शिष्य ने सब ज्यों का त्यों उसी कुटिया में छोड़ दिया लेकिन फिर भी चलते हुए उसने गुरु से चोरी कुछ सिक्के अपनी झोली में डाल लिये। दोनों अगले गाँव की ओर चल दिये लेकिन वे जिस गाँव जाना चाहते थे, उसे एक नदी पार करके जाना पड़ता था। जब वे नदी तट पर पहुँचे तो नाव वाले ने कहा, ''मैं नदी पार कराने के 2 सिक्के लेता हूँ। आप लोग साधु-महात्मा है इसलिए आपसे एक ही लूँगा।''

संत के पास पैसे नहीं थे, इसलिए वह वहीं आसन लगा कर बैठ गए। शिष्य के पास पैसे थे लेकिन क्योंकि वह उन सिक्कों को गुरु की आज्ञा के विरुद्ध चोरी से लाया था, इसलिए उसने भी सिक्के नहीं दिए और वह भी गुरु जी के साथ बैठ गया, यह देखने के लिए कि गुरु जी बिना पैसों के नदी कैसे पार करते हैं?

गुरु जी इस आस में बैठे थे कि या तो नाव वाला उन्हें बिना सिक्कों के नदी पार करवा दे या कोई भक्त आ जाए, जो उन्हें दान-दक्षिणा दे दे, ताकि वह उससे लनाव वाले का भुगतान कर दें। बैठे-बैठे शाम हो गई, लेकिन गुरु जी का न तो कोई भक्त ही आया और न ही नाव वाला उन्हें बिना सिक्कों के नदी पार करवाने के लिए राजी हुआ। जब शाम हो गई तब नाव वाले ने उन्हें डराते हुए कहा, ''यहाँ रात रुकना खतरे से खाली नहीं है। इसलिए बेहतर यही होगा कि आप यहाँ से या तो नदी पार करके अपने गंतव्य स्थान पर चले जाएं या जहाँ से आए हैं वहीं चले जाएं।''

खतरे की बात सुनकर शिष्य घबरा गया और उसने झट से अपनी झोली से 2 सिक्के निकालकर नाव वाले को दे दिये। बदले में नाव वाले ने उन्हें नदी पार पहुँचा दिया। गुरु जी ने शिष्य से पूछा, ''तुमने गाँव का चढ़ावा क्यों ले लिया, मैंने तुम्हें सब कुछ छोड़ देने के लिए कहा था फिर भी तुमने ये सिक्के अपने पास क्यों रख लिए?'' शिष्य बोला, ''गुरु जी, यदि वे सिक्के मेरी झोली में न होते तो संभवतः हम दोनों कष्ट में पड़ जाते।'' संत ने मुस्कुराकर कहा, ''जब तक सिक्के तुम्हारी झोली में थे, तब तक हम कष्ट में ही थे, जैसे ही तुमने उनका त्याग किया, हमारा काम बन गया। इसलिए त्याग में ही सुख है।''

48. मरने के बाद धन नहीं परोपकार को किया जाता है याद

संत इब्राहिम की ईमानदारी के चर्चे उन दिनों हर किसी की जुबां पर थे। लोग इब्राहिम के पास अपनी सारी समस्याएं लेकर आते और उनका निराकरण करा वापस घर लौट जाते थे। एक दिन एक धनी व्यक्ति संत के पास आया और उन्हें बहुत सारा धन दान

देने की इच्छा व्यक्त की लेकिन संत को उस व्यक्ति के व्यवहार में अहंकार नजर आया। संत उस व्यक्ति से बोले, ''मेरे पास धन की कमी नहीं है।'' संत ने आगे कहा, ''मान लेते हैं कि तुम्हारे पास धन के कई भंडार भरे हुए हैं लेकिन तुम्हारी दौलत पाने की इच्छा कभी समाप्त नहीं होगी।'' ऐसे में तुमसे ग़रीब इस समय कौन है? इसलिए यह धन अपने पास ही रखो। यह सब सुनकर वह शर्मिन्दा हो गया। उसने अपने बर्ताव के लिए क्षमा मांगी।

तब संत इब्राहिम ने उससे कहा, ''सच्चे मन से मनुष्य की सेवा करना ही सबसे बड़ा धन है और इसे ही हम परोपकार कहते हैं। परोपकार के लिए पेड़ फल देते हैं। परोपकार के लिए ही नदियाँ बहती हैं। परोपकार एक ऐसा गुण है जो धन से भी बड़ा माना जाता है। धन तो आपके मरने के बाद चला जाएगा लेकिन हमारे द्वारा किए गए परोपकारी कार्य मरने के बाद भी याद किए जाते रहेंगे।

49. दुःख को भी सहजता से स्वीकार करें....

हकीम लुकमान बचपन में गुलाम थें वह अपने मालिक के घर रहकर काम करते थे। एक दिन मालिक ने खाने के लिए ककड़ी खरीदी। ककड़ी कड़वी थी तो मुँह में जाते ही मालिक का मुँह कड़वा हो गया उसने मजाक में वह ककड़ी लुकमान की ओर बढ़ाते हुए कहा कि ले तूं यह ककड़ी खा ले। लुकमान ने ककड़ी मुँह में डाली तो उसे भी वह कड़वी लगी लेकिन उसने बिना कुछ कहे ककड़ी खा ली।

मालिक को आश्चर्य हुआ कि उसने लुकमान के मुँह को देखने के लिए मजाक में ककड़ी दी थीं परन्तु उसने बड़ी आसानी से

कैसे खा ली? मालिक ने पूछा, 'लुकमान, तूने इतनी कड़वी ककड़ी कैसे खाई?' लुकमान ने उत्तर दिया, ''मैं आपके आश्रय में रहता हूँ। आप रोज मुझे खाने को स्वादिष्ट चीजें और सुविधायें देते हैं। मैं उन वस्तुओं का उपभोग कर आनंदित होता हूँ। मैंने सोचा, यदि मालिक की इच्छा है, मैं एक दिन ऐसी ककड़ी खाऊँ तो क्यों न प्रसन्नता से ही खाऊँ। बस यही सोचकर मैंने आपकी दी हुई ककड़ी खा ली।''

लुकमान का मालिक धार्मिक और समझदार व्यक्ति था। उस पर लुकमान की बात का प्रभाव हुआ। वह बोला, ''लुकमान आज तुमने मुझे उपदेश दिया हे कि जो परमात्मा हमें जीवन में अनेक सुख देता है, उसकी मर्जी से यदि हमें कोई दुःख भुगतना पड़े तो उसे प्रसन्नता से ही स्वीकार करना चाहिए। जीवन में अनुभवों को अहोभाव से स्वीकार करना एक अत्यंत महत्वपूर्ण गुण हैं इसकी ही बदौलत अनुभवों में छिपे संदेश को ग्रहण करने में सक्षम हुआ जा सकता है। यह हमें परिपक्व बनाता है तथा समत्वभाव को जागृत करने में भी सहायक होता हैं यह समत्वदृष्टि ही मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि एवं मुक्ति का साधन है।'' उसने लुकमान को धन्यवाद देते हुए उसे गुलामी से मुक्त कर दिया।

50. यही है सच्ची सहनशीलता

एक आलिम दीनी तालीम दिया करते थे। वह लोगों की समस्याओं को सुन उनके समाधान भी बताया करते थे। वह बड़े नेक दिल व सच्चे थे। इसलिए उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उन्हें कभी गुस्सा नहीं आता था लेकिन जिसका सम्मान जितना अधिक होता है उसके विरोधियों किो वह उतना ही खलने लगता हैं एक बार विरोधी गुट के आचार्य ने सोचा, ''मैं देखता हूँ कि उसे

कैसे गुस्सा नहीं आता? मैं आज यह भ्रम तोड़कर रहूँगा।'' यह कहकर वह अपने घर आए और भेष बदलकर आलिम की कुटिया में जा पहुँचे।

वहाँ बहुत लोग पहले से ही बैठे थे। उन्होंने पास जाकर उनका अभिवादन किया और सबके साथ बैठ गए। कुछ देर बाद उन्होंने आलिम से कहा, ''मुझे एक बात जाननी है, अगर आपकी इज़ाज़त हो तो पूछूं।'' आलिम ने अपने स्वभाव के अनुसार कहा, ''पूछो क्या जानना चाहते हो? अगर रब ने चाहा तो तुम्हें जवाब जरूर मिलेगा।'' आचार्य ने पूछा कि गोबर का स्वाद कैसा होता है? बड़ा अटपटा सवाल था। सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये। आलिम बोले, 'गोबर का स्वाद शायद कुछ-कुछ मीठा होता है।'' उसने पूछा कि आपको कैसे पता मीठा होता है या कड़वा? क्या आपने चख कर देखा है?

आचार्य का सवाल सुनकर वहाँ बैठे लोग आग बबूला हो गए कि इसकी हिम्मत कैसे हुई ऐसी बात कहने की परन्तु आलिम ने सभी को शांत किया और बोले, मैंने मीठा इसलिए कहा कि अक्सर देखा जाता है कि उस पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं और वह आमतौर पर मीठे पर ही बैठती हैं।'' इस शांत जवाब पर आचार्य नतमस्तक हो गए। अपना परिचय देते हुए वह बोले कि मेरा ऐसा सवाल सुनकर बड़े से बड़ा शांत स्वभाव का व्यक्ति भी क्रोधित हो जाता परन्तु आपके बारे में जैसा सुना वैसा ही पाया। आपकी सहनशीलता वंदनीय है।

51. जब अश्लील साहित्य पढ़ने को मजबूर हुए रूसो

रूसो को पढ़ने का बड़ा शौक था। बचपन में ही उसकी माँ

का निधन हो गया। फिर भी वह पिता के साथ ज़िन्दगी में आगे बढ़ता रहा। उसके पिता घड़ी बनाने में माहिर थे। मगर वे अपनी लापरवाही की कारण कभी-कभी काम करते थे। वे शराब बहुत पीते थे। इस कारण अक्सर पैसों की तंगी हो जाती थी और नतीजा यह होता था कि रूसो की पढ़ाई रुक जाती थी। रूसो इससे परेशान रहता था। मगर सबसे बड़ा संकट आना अभी शेष था। एक शाम रूसो का पिता बहुत शराब पीकार आया और उसे आवाज़ दी कि वह उसके पास आकर बैठे।

रूसो आया तो उन्होंने पूछा कि अब तक तुमने क्या पढ़ा है? कुछ पढ़ भी पाते हो। रूसो ने हाँ में सिर हिलाया तो पिता ने एक किताब देते हुए कहा कि इसे पढ़ो। रूसो ने पूछा यह क्या है तो पिता ने चीखकर कहा कि तुमसे जो कहता हूँ वह करो। रूसो पढ़ने लगा। यह एक अश्लील साहित्य की किताब थी। जब रूसो रुकता तो डाँट खाता। उसका बाप सुनते-सुनते सो गया। मगर रूसो की नींद ही उड़ गई।

बाल मन पढ़ाई के इस चेहरे से दूर था। बाप शराब के नशे में उससे अश्लील साहित्य पढ़वाने लगा। इससे रूसो के मन में पढ़ाई और इस काम दोनों से घृणा हो गई। उसने एक रात अपना घर छोड़ दिया। बचपन में सुधारने की जगह बिगाड़ने के उसके साथ इतने प्रयोग किए गए फिर भी वह नहीं टूटा। संघर्ष का उसका संकल्प काम आया। उसने आगे चलकर राज्यों के सिद्धान्त दिए, सभ्यता का खाका खींचा। कोई कह भी नहीं सकता कि यह वही रूसो था जिससे सब कुछ छीन लिया गया था। इसलिए हमें भी तय कर लेना होगा कि हमारा बचपन या कोई भी दौर बुरा बीता हो, हम आने वाला कल तो सुधार ही सकते हैं यह असम्भव है। रूसो ऐसा कर सकते हैं तो हम और आप क्यों नहीं।

52. सिकन्दर और साधु की मुलाक़ात

सिकन्दर महान् को न जाने क्या हवस हो गई कि सारी दुनियाँ को जीतनी को उतारू हो गया। दुनियाँ फ़तह भी की। भारत आकर उसके हृदय में पीड़ा सी उठी। एक साधु से मुलाक़ात हो गई। वार्तालाप हुआ। सिकन्दर की अदम्य इच्छा थी कि भारत के किसी संत से मुलाक़ात हो जाए। उसे दंडकारण्य में कल्याण मुनि नामक एक साधु का पता मिला। सिकन्दर ने पहले तो अपने दूतों को भेजा, परन्तु साधु की मस्ती देखकर वे वापिस चले आये। उन्होंने सिकन्दर महान् से कहा कि वह सवयं वन में जाकर साधु से मिल लें।

सिकन्दर जब वन में गया तो हैरान रह गया। शरद ऋतु का समय था। हल्की-हल्की ठंड पढ़ रही थी। देखा कि मात्र एक लंगोट पहने एक व्यक्ति ध्यानमग्न है। उसके चेहरे पर अद्‌भुत शांति विराजमान थी। सिकन्दर नजदीक पहुँचा। आहट सुन कर साधु ने आँखें खोली। सिकन्दर ने कहा, ''ऐ साधु, आज सिकन्दर महान् तेरे सामने खड़ा है। मांग ले जो भी मांगना है। आज तेरी हर बात पूरी करूँगा। तेरे तो भाग्य खुल गए।'' साधु आश्चर्यचकित होकर उसे देखता रह गया। सिकन्दर ने कहा, ''मांग ले, आज मैं स्वयं चल कर तेरे पास आया हूँ।''

साधु ने कहा, ''ऐ मूर्ख वापस चला जा। तू मुझे क्या देगा? इस कलकल बहती नदी को देख, बता इसे जल कौन देता है? इन हवाओं को अनुभव कर और बता कि ये किसके हुक्म से बहती है। सूरज को देख, इसे इन सुनहरी रोशनियों से कौन भरता है। अगर इनमें से तुमने इसे कुछ दिया है, तो मैं भी तुम से कुछ माँग लूँगा, अन्यथा दूर हो जा मेरे सामने से, जो धूप मेरे शरीर को स्पर्श करना चाहती है उसमें व्यवधान न डाल।''

हैरान रह गया सिकन्दर। आज तक किसी की हिम्मत न हुई थी कि इस तरह अकड़ कर उससे बात करता लेकिन इस बार उसे क्रोध नहीं आया। वह सोचने पर मजबूर हो गया, जो सैनिक इस बात के लिए उतावले हो रहे थे कि सिकन्दर महान् के एक इशारे पर वह साधु का सिर धड़ से अलग कर देंगे। वे भी आश्चर्यचकित थे कि सिकन्दर मौन खड़ा था। बात कहीं जाकर लग गई थी। उसने इस बार कुछ नम्रता का परिचय दिया। वह बोला, ''मैं मानता हूँ कि आज तक मुझे किसी ने उपदेश नहीं दिया। लोग डरते रहे, आप कुछ मिनट के लिए ही सही, मेरा मार्गदर्शन करें।''

साधु ने पूछा, ''तू यूनान से भारत क्यों आया है?''

सिकन्दर–मैं विश्वविजेता बनना चाहता हूँ।

साधु – इससे क्या होगा?

सिकन्दर – मैं सारी दुनियाँ पर राज करूँगा।

साधु– तुम्हें इससे प्राप्त क्या होगा?

सिकन्दर– मेरे पास अकूत धन होगा।

साधु–अकूत धन के अलावा और क्या होगा?

सिकन्दर–मेरे पास असीम शक्ति होगी।

साधु–असीम धन और असीम शक्ति लेकर तू करेगा क्या, तुम्हें मिलेगा क्या?

साधु–तो फिर इतना खून खराबा क्यों, आ मेरे पास बैठ और प्रभु स्मरण कर। इससे अधिक शांति और कहाँ है?

सिकन्दर वापस यूनान लौट गया। रास्ते में उसकी तबीयत खराब हो गई। मृत्यु नजदीक आती दिखाई दी। उसने अपने सेनापति सेल्यूक्स को बुलाया और कहा, ''मैं अब कुछ घंटों का

मेहमान हूँ। मैं बचूँगा नहीं। जब मैं मरूँ तो मेरे दोनों हाथ मय्यत से बाहर निकलवा देना, ताकि जमाना देख सके कि सिकन्दर खाली हाथ आया था और खाली हाथ चला गया। अगर दण्डकारण्य का वह ब्राह्मण यूनान में सिकन्दर को मिला होता तो उसकी दुनियाँ बदल गई होती, उसे शांति का मार्ग पता चल गया होता।

53. प्रभुनाम

श्रोता चार प्रकार के होते हैं। पत्थर की भाँति, कपड़े की भाँति, रबड़ की भाँति और मिट्टी की भाँति। चारों की प्रकृतियाँ अलग-अलग होती हैं। पत्थर की भाँति श्रोता वह होता है जिस पर जितने भी पानी के छींटे डालें, फिसल जाएंगे, जितना भी पानी डालें, टिकेगा नहीं। दूसरे अर्थों में, पत्थर भीगता नहीं। थोड़ी देर गीला हुआ, कुछ ही देर बाद सूख गया.... ऐसे श्रोता संत का प्रवचन तो सुनते हैं, लेकिन इस कान से सुन कर दूसरे कान से निकाल देते हैं।

कपड़े की भाँति श्रोता वे होते हैं, जिन पर असर तो होता है, लेकिन थोड़ी देर के लिए। कपड़ा जब पानी में रहेगा, भीगा रहेगा। पानी से बाहर निकलते ही उसका पानी निचुड़ जाता है। कपड़ा सूख जाता है अर्थात् जब तक इस प्रकार के लोग सत्संग में रहते हैं, प्रवचन सुनते हैं, सत्संग के रंग में रंगे रहते हैं। कपड़ा गीला रहता है अर्थात् श्रोता भगवद्प्रेम में डूबा रहता है, लेकिन सत्संग के माहौल से निकलते ही कपड़े की भाँति सूख जाते हैं, अर्थात् जो सुना था, वह भूल जाता है। उपदेश का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

रबड़ की भाँति श्रोता वे होते हैं जो जब तक उपदेश सुनते हैं, बड़ी मस्ती से सुनते हैं। झूमते भी हैं। परन्तु सत्संग के समाप्त होते ही रबड़ की तरह सिकुड़ जाते हैं, अपनी वास्तविक स्थिति पर आ

जाते हैं। जो सुना था, उसका आनन्द तो लिया लेकिन सुनने के पश्चात् उसे भुला कर, फिर कोरे हो जाते हैं।

मिट्टी की भाँति श्रोता वे होते हैं, जो सुनते हैं, अपने में समा लेते हैं। अंतस्थ कर लेते हैं। जिस प्रकार मिट्टी गीली होती है, पानी को अपने में जज़्ब कर लेती है। गीली मिट्टी में यदि बीज डाला जाए तो अंकुरित हो उठता है अर्थात् सत्संग में सुना ज्ञान अंतस्थ कर लेते हैं, मिट्टी की भाँति अर्थात् जो ज्ञान वे सुनते हैं, उसे मन में उतारते हैं। मन ज्ञान से गीला होता है और गीला मन ही अपने में ज्ञान समाहित करने की क्षमता रखता है। गीले मन से ही, धर्म और सदाचार का अंकुर एक दिन फूट पड़ता है।

परन्तु सर्वश्रेष्ठ श्रोता वही होता है जिसने मिट्टी की भाँति पाया और उसको अपने जीवन में उतार लिया जैसे तुलसीदास लिखते हैं–

पर उपदेश कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे।।

–रामचरितमानस (लंकाकाण्ड) 77.1

54. अच्छे बुरे की परख

जैसा कि आप जानते हैं कि कौरवों और पांडवों की शिक्षा-दीक्षा गुरु द्रोणाचार्य के आश्रम में हुई। एक बार की बात है कि गुरु द्रोणाचार्य अच्छाई और बुराई के बारे में पाठ पढ़ा रहे थे, पाठ दो-तीन दिन तक चलता रहा। इसके बाद गुरु जी ने कौरवों और पांडवों से कहा कि अच्छाई और बुराई को भलीभाँति जान लो, कल तुम्हारी परीक्षा होगी। अगले दिन गुरु जी ने पांडवों में से युधिष्ठिर तथा कौरवों में से दुर्योधन को बड़ा होने के कारण परीक्षा के लिए चुना। उन्होंने दोनों को दो-दो काग़ज़ देकर कहा कि पास के

नगरों में जाओ और सप्ताह भर में अच्छे और बुरे लोगों के नाम लिख कर लाओ। दोनों परीक्षा के लिए निकल पड़े और एक सप्ताह बाद खाली काग़ज़ लेकर लौट आए। गुरु जी ने डांट कर पूछा, ''क्या कार्य पूरा नहीं किया?'' दोनों ने कहा कि कार्य तो पूरा हो गया, लेकिन लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ी।'' गुरु जी ने उत्तर जानना चाहा।

पहले दुर्योधन की बारी थी, गुरु जी ने पूछा, ''दुर्योधन क्या आस-पास कोई भी अच्छा या बुरा व्यक्ति नहीं मिला? दुर्योधन ने कहा गुरु जी जब मैं बुरे व्यक्ति ढूंढने लगा तो हर व्यक्ति बुराइयों से भरा था, बुरे ही बुरे लोग थे अतः किसी का भी नाम नहीं लिखा, सोचा जब सभी बुरे हैं तो कागज कयों खराब करूँ। इसी प्रकार जब अच्छे लोग ढूंढने गया तो एक व्यक्ति के अतिरिक्त कोई भी अच्छा व्यक्ति नहीं मिला, वह अच्छा व्यक्ति मैं स्वयं हूँ गुरु जी।'' दुर्योधन ने गर्व से उत्तर दिया। ''चूंकि मैं आपके पास आ ही रहा था। अतः अपना नाम लिखना ठीक न समझा।''

अब युधिष्ठिर की बारी थी। गुरु जी बोले, ''युधिष्ठिर तुम भी कारण सहित उत्तर दो कि तुम्हारे काग़ज़ खाली क्यों रह गए।'' युधिष्ठिर ने नम्रता से कहा, ''गुरु जी जब मैं आस-पास अच्छे व्यक्ति ढूंढने गया तो हर व्यक्ति अच्छा था, सभी में कुछ न कुछ अच्छाई जरूर थी। अतः किसी का भी नाम नहीं लिखा, सभी लोग अच्छे हैं। इसके बाद जब मैं बुरे लोगों को ढूंढने निकला तो सबसे बुरा मैंने स्वयं को पाया और कोई व्यक्ति बुरा मिला ही नहीं लेकिन सोचा गुरु जी के पास जा ही रहा हूँ, वहीं स्वयं उपस्थित हो जाऊँगा।'' इतना कह कर युधिष्ठिर सिर झुका कर खड़ा हो गया। गुरु जी दोनों के विचार सुन कर आश्चर्य में पड़ गए। इसके बाद

उन्होंने सभी को बिठा कर पुनः बताया कि वास्तव में अच्छाई-बुराई हर व्यक्ति में होती है लेकिन हमारा कर्त्तव्य है कि हम व्यक्ति की अच्छाइयाँ ही देखें और ग्रहण करें। हमें अपनी बुराइयों को जान कर शीघ्र दूर करना चाहिए। यही जीवन के सुख का आधार है। व्यक्ति पहले स्वयं को जाने-परखे फिर दूसरों की अच्छाइयाँ, बुराइयाँ देखें। जैसे उर्दूशायर ज़ौक लिखते हैं–

दूसरों पर अगर तबसिरा (आलोचना) कीजिए।

तो सामने अपने आईना रख लीजिए।।

55. तस्वीर दे गई चित्रकार को सीख

एक नगर में एक चित्रकार रहता था। उसने एक सुन्दर तस्वीर बनाई और चौराहे पर टांग दी। चित्रकार ने तस्वीर के नीचे लिख दिया–

''इस तस्वीर में जहाँ भी कोई कमी दिखाई दे वहाँ निशान लगा दें।''

शाम होते ही वह तस्वीर खराब हो चुकी थी। आने-जाने वाले लोगों ने वहाँ कई निशान लगा दिए थे। यह देख कर चित्रकार बहुत दुःखी हुआ। तभी उसका एक मित्र वहाँ पहुँचा। उसने चित्रकार से उसके दुःख का कारण पूछा। चित्रकार ने विस्तारपूर्वक अपने दुःख का कारण मित्र को बताया। तब मित्र ने कहा, ''कल एक दूसरी तस्वीर बनाना और उसे चौराहे पर टांग देना। उसके नीचे लिखना–''इस तस्वीर में जहाँ कभी भी कोई कमी नजर आए, उसे सही कर दें।'' अगले दिन चित्रकार ने यही किया।

शाम को जब चित्रकार ने अपनी उस तस्वीर को देखा तो उसे किसी ने खराब नहीं किया था। वह समझ गया कि यही संसार की रीति है, कमी निकालना, निन्दा करना लेकिन उन कमियों को दूर

करना कठिन है । तात्पर्य यह कि यदि प्रश्न सही पूछा जाए तो उत्तर भी सही मिलेगा । इसलिए किसी चीज़ में कमी नहीं खोजें, बल्कि उसे और बेहतर बनाने के लिए सुझाव मांगें । आपकी ज़िन्दगी खुशनुमा हो जाएगी ।

56. तो समय भी आपको नष्ट कर देगा

महान् वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन की किताबों की एक दुकान थी । एक दिन एक ग्राहक ने उनकी दुकान पर एक किताब की ओर इशारा करते हुए काऊंटर पर बैठे व्यक्ति से पूछा कि इस किताब का मूल्य क्या है ? उसने उत्तर दिया, ''दो डॉलर !'' कुछ देर चुप रहने के बाद उसने फिर पूछा कि इस दुकान के मालिक कहाँ हैं । उत्तर मिला, ''वह आधे घंटे के बाद ही यहाँ पहुँचेंगे । ग्राहक बोला, ''ठीक है, मैं आधे घंटे बाद ही आता हूँ ।'' मालिक फ्रैंकलिन के आने के बाद फिर उसने पूछा कि इसका मूल्य क्या है ? फ्रैंकलिन ने कहा, ''सवा दो डॉलर ।'' ग्राहक ने कहा, ''अभी तो आपका स्टाफ दो डॉलर बता रहा था ।''

थोड़ी देर तक वह चुप रहा और कुछ सोचने के बाद उसने फिर पूछा, ''अच्छा बताइए, मैं आपको इसका क्या उचित मूल्य दूँ ?'' फ्रैंकलिन ने कहा, ''अढ़ाई डॉलर'' । इस बार ग्राहक सकते में आ गया और शिकायत के लहजे में कहने लगा, ''अभी-अभी तो आपने इसका मूल्य सवा दो डॉलर बताया था ।'' तब फ्रैंकलिन ने उसे शांतिपूर्वक समझाया, ''शायद तुमको समय की कीमत का ज्ञान नहीं है । इतनी देर से तुम मेरा और मेरे स्टाफ का समय खर्च कर रहे हो, उसका मूल्य भी तो इसमें सम्मिलित है ।''

यह सुनते ही ग्राहक को समय का ज्ञान हुआ और वह पैसे देकर किताब ले गया । बेंजामिन फ्रैंकलिन समय के महत्त्व को जानते थे, इसी कारण वह अमरीका के महान् वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ

और चिंतक बन सके ।

फ्रैंकलिन कहते थे, ''समय बर्बाद मत करो क्योंकि समय से ही जीवन बना है ।'' निःसन्देह वक्त और सागर की लहरें किसी की प्रतीक्षा नहीं करती । हमारा कर्त्तव्य है कि हम समय का पूरा-पूरा सदुपयोग करें । हमारा समय धन से भी जयादा कीमती है । कहते हैं कि खोया हुआ धन और खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त हो सकता है, परन्तु खोया हुआ समय पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता ।

समय सबसे मूल्यवान वस्तु है । उसे बड़ी मितव्ययता से खर्च करना चाहिए । जितना आप अपने समय रूपी धन को बचाकर रखेंगे और उसे आवश्यक व उपयोगी कार्यों में लगाएंगे, उतनी ही आपके व्यक्तित्व की महत्ता और कीमत बढ़ती जाएगी । यह आप पर निर्भर करता है कि इससे आप कितना लाभ उठा सकते हैं या इसका दुरुपयोग करते हैं । समय व्यर्थ में नष्ट करेंगे तो एक दिन समय भी आपको नष्ट कर देगा ।

57. सच्ची सेवा में ही परम सन्तोष

मनुष्य का एक मित्र है—धर्म । दूसरों को ईश्वर का अंश मानते हुए उनकी भलाई के लिए कार्य करना ही धर्म है । यदि कोई व्यक्ति सेवक बन कर किसी की सेवा करता है तो उसे परम संतोष और विशेष शांति मिलती है ।

सेवा के लिए मनुष्य के मन में सर्वप्रथम यही विचार आना चाहिए कि दुःखी व्यक्ति भी अपना है और यदि यह दुःखी रहेगा तो मैं भी दुःखी रहूँगा । यानी जब हमारे हृदय में दया और अपनत्व का भाव होगा, तभी हम सेवा के लिए तत्पर हो सकेंगे । जैसे किसी को ठंड में कांपते देखने पर हमारा शरीर भी यदि उस ठंड को महसूस करेगा, तब उस व्यक्ति के लिए कंबल की व्यवस्था करने का

सेवाभाव हमारे मन में जागृत होगा ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । उसके चारों ओर उसके संबंधियों और मित्रों, पशु-पक्षियों आदि का समुदाय दिखाई देता है और वह इनके बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता । ऐसे में एक-दूसरे की सहायता करना ही उनका कर्त्तव्य धर्म है । विशेष बात यह है कि सेवा से अहंकार का भी नाश होता है, जो ईश्वर प्राप्ति में सबसे बड़ा बाधक है । दरअसल सेवा का मतलब समर्पण है, विश्वास है ।

समर्पण क्या है? एक बरगद ने ताउम्र लोगों की सेवा की । धूप होने पर लोग उसकी छाया में बैठते, त्योहारों पर महिलाएं उसकी पूजा करतीं । जब वृक्ष बूढ़ा हो गया तो वह सूखने लगा, उसकी जड़ें भी कमजोर हो गई । लोग उसे काटने के लिए कुल्हाड़ी ले आए । एक नन्हा वृक्ष बोला, ''दादा, ये कैसे स्वार्थी लोग हैं, जिन्होंने आपकी छाया ली, वे ही आज आपको काटने आ रहे हैं । क्या आपको गुस्सा नहीं आ रहा?'' बूढे बरगद ने कहा, ''गुस्सा किस बात का । मैं यह सोचकर प्रसन्न हूँ कि मरने के बाद भी इनके काम आ रहा हूँ ।''

यही समर्पण है कि हर हाल में अपने दिल में परोपकार की भावना रखना । अब सेवा में विश्वास क्या है? उसे समझते हैं । असल में सेवा कई तरह की होती है । कई बार व्यक्ति कामनायुक्त होकर सेवा करता है । यह सेवा दूसरे से लाभ लेने या फिर नुक्सान पहुँचाने के लिए की जाती है । यह तामसिक सेवा कहलाती है लेकिन जो निष्काम भाव से सेवा करता है तो वह सेवा सात्विक होती है ।

58. खुद में मिलती है हमें असल खुशी

लोग अलग-अलग तरीकों से खुशियाँ ढूंढने की कोशिश करते हैं। कुछ इसे धन-दौलत और दुनियावी चीजों में ढूंढते हैं। कुछ इसे यश और प्रसिद्धि में पाना चाहते हैं। अधिकतर लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के द्वारा ही खुशियाँ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। हमारा जीवन ऐसे ही गुजरता चला जाता है, जिसमें हम एक के बाद एक अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में ही लगे रहते हैं।

समस्या यह है कि हमारी इच्छाओं का कोई अंत ही नहीं होता। जब हमारी एक इच्छा पूरी हो जाती है तो हमारे अंदर दूसरी पैदा हो जाती है। जब वह भी पूरी हो जाती है तो हमारे अन्दर कोई और इच्छा उत्पन्न हो जाती है। उसके बाद फिर कोई अन्य इच्छा जाग जाती है। इस तरह हमारा जीवन गुजरता चला जाता है।

यह सच है कि आधुनिक संस्कृति हमारे अंदर नई-नई इच्छाओं को पैदा करती है। हम पोस्टरों, होर्डिंग्स, टी.वी. और रेडियो पर रोज़ नए-नए विज्ञापन देखते-सुनते हैं। यदि हम इन चीजों पर विचार करें तो पाएंगे कि ये हमें वे स्थायी खुशियाँ नहीं देतीं, जिनका हमसे वादा किया जाता है। हम थोड़े समय के लिए जरूर इनसे खुशी हासिल करते हैं लेकिन इनके खो जाने या नष्ट हो जाने या रिश्ते नातों के टूट जाने या दूर हो जाने से हमें बहुत ही दुःख और पीड़ा सहन करनी पड़ती है। इसलिए आवश्यकता है सही प्रकार की इच्छा रखने की।

युगों-युगों से संत-महापुरुष यही बताते चले आए हैं कि सच्ची खुशी हमें अवश्य मिल सकती है लेकिन उसे हम केवल अपने अंतर में पा सकते हैं। अगर हम बाहरी दुनियाँ में उसे ढूंढेंगे तो हमें निराशा ही हाथ लगेगी। यदि हम इस भौतिक संसार में संपूर्णता की

तलाश करेंगे तो वह हमें कभी भी नहीं मिलेगी। सच्ची खुशी पाना इतना भी कठिन नहीं है, जितना हम सोचते हैं। स्थायी खुशी हमें अवश्य मिल सकती है यदि हम उसे सही स्थान पर खोजें और वह सही स्थान हम स्वयं हैं। यदि हम अपने अंतर में सच्चे आत्मिक स्वरूप का अनुभव कर लेंगे तो हमें इतनी अधिक खुशियाँ और प्रेम मिलेगा, जो इस संसार की किसी भी इच्छा की पूर्ति से हमें नहीं मिल सकता।

59. पीपलपूजा रहस्य

दधीचि पुत्र पिप्पलाद ने जब माता से अपने पिता की देवताओं द्वारा अस्थियाँ मांगे जाने और उनसे बने वज्र से अपने प्राण बचाने का पौराणिक विवरण सुना तो उनके मन में देवताओं के प्रति घृणा उपजी। ''मैं इनसे पिता को 'सताने' का बदला लूंगा।''' ऐसा संकल्प करके पिप्पलाद तप करने लगे। कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए और बोले, ''वर मांगो।''

पिप्पलाद ने नमन् किया और बोले, ''प्रभु! अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके अपना रौद्र रूप प्रकट कीजिए और इन देवताओं को जलाकर भस्म कर दीजिए।''

शिव यह अनुरोध सुन कर स्तब्ध रह गये, परन्तु वचन तो पूरा करना ही था। देवताओं को जलाने के लिए तीसरा नेत्र खोलने का उपक्रम करने लगे।

इस आरंभ की प्रथम परिणति यह हुई कि पिप्पलाद का रोम-रोम जलने लगा। वह चिल्लाए और बोले, ''प्रभु! यह क्या हो रहा है? देवता नहीं, उल्टा मैं ही जला जा रहा हूँ।''

शिव ने कहा, ''देवता तुम्हारी देह में ही समाए हुए हैं। अवयवों की शक्ति उन्हीं की सामर्थ्य है। देव जलें और तुम अछूते

बचे रहो यह तो संभव नहीं है ।''

पिप्पलाद ने अपनी याचना वापस ले ली तो शिव ने कहा, ''देवताओं ने त्याग का अवसर देकर तुम्हारे पिता को कृत-कृत्य और तुम्हें गौरवान्वित किया है । मरण तो होता ही है, न तुम्हारे पिता बचते और न काल के ग्रास से वृत्रासुर बच रहता । यश, गौरव प्राप्त करने का लाभ प्रदान करने के लिए देवताओं के प्रति कृतज्ञ होना ही उचित है ।''

पिप्पलाद का भ्रम दूर हो गया। उनकी तपस्या आत्म-कल्याण की दिशा में मुड़ गई । पिप्पलाद को ही पीपल कहते हैं । उनके त्याग, साधना और परोपकार की भावना के कारण उन्हें पूजा जाने लगा । पीपल समस्त वृक्षों में सबसे पवित्र इसलिए माना गया है क्योंकि स्वयं भगवान् श्रीहरि विष्णु पीपल में निवास करते हैं । श्रीमद्भगवत गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से उच्चारित किया है कि, ''वृक्षों में मैं पीपल हूँ ।''

स्कंद पुराण के अनुसार पीपल के मूल (जड़) में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान् हरि और फलों में समस्त देवताओं से युक्त भगवान सदैव निवास करते हैं। ऑक्सीजन 'प्राण-वायु' कही जाती है। प्रत्येक जीवधारी ऑक्सीजन लेता है व कार्बनडाईआक्साइड छोड़ता है । ऑक्सीजन देने के अतिरिक्त पीपल में अनेक विशेषताएं हैं जैसे इसकी छाया सर्दी में गर्मी देती है और गर्मी में शीतलता देती है । इसके अतिरिक्त पीपल के पत्तों से स्पर्श करने से वायु में मिले संक्रामक वायरस नष्ट हो जाते हैं । इसकी छाल, पत्तों और फल आदि से अनेक प्रकार की रोगनाशक दवाएं बनती हैं । इस दृष्टि से भी पीपल पूजनीय है ।

60. गाय के दूध का प्रभाव

इस देश के लोगों ने जब से गाय का दूध छोड़कर भैंस का दूध पीना आरम्भ कर दिया तब से देश के लोगों की मानसिकता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। भैंस के दूध से लोगों की बुद्धि खराब हुई है। शरीर की सहनशक्ति कम हुई है और भाईचारा समाप्त हुआ है, क्योंकि भैंस के दूध में इन तीनों के विनाश के तत्त्व पाये जाते हैं। एक समय था जब इस देश का युवक सारे दिन अपने घरेलू धन्धों में व्यस्त रहता था, और जो उसके पास कुछ समय बचता था तो उस समय को वह बेकार नहीं जाने देता था।

वह उन साधुओं की संगति करता था, जो उस समय इस देश की पवित्र संस्कृति के पहरेदार बनकर नदियों के किनारे पर अपना तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे। आज के इंसान को जंगल में भी हिंसक जानवरों का उतना भय नहीं है जितना उसे आज के इंसान से है। एक कवि ने मौजूदा इंसान की मानसिकता का चित्र खींचा है देखिये–

रिश्तों में अब दूरियाँ बढ़ने लगी हैं।
आदमी दीवार होता जा रहा है।।
किस तरह दामन बचाये आग से।
आदमी अंगार होता जा रहा है।।
अब कौन बाँटेगा दवाएं दर्द की।
आदमी बीमार होता जा रहा है।।
हर शक्ल को सजी हुई दुकान मानिये।
देखिये अब अपने जख्मों को बचाइये।
आदमी तलवार होता जा रहा है।।

61. आत्मनिरीक्षण करें

व्यक्ति जैसे-जैसे होश संभालता है तो उसे अपने-पराये का,

अच्छे बुरे का ज्ञान भी होता चला जाता है। जैसे-जैसे दुनियाँ को देखता है तो उसकी कुछ सीखने की कुछ बनने की इच्छा बढ़ती चली जाती है। जब वह आकाश में जहाज को उड़ते देखता है। तो सोचता है कि यदि मैं भी पायलट बन जाता तो अंतरिक्ष की सैर करता। जब वह देखता है कि एक नेता के स्वागत में कई हज़ार लोग हाथ जोड़े हुए खड़े हैं और हाथों में मालायें लेकर उसके गले में डाल कर उसका सवागत करते हुए जोर-जोर से नारे लगा रहे हें तो उसका मन करता है कि काश मैं भी नेता होता तो क्या ही अच्छा होता।

जब वह घर बैठे ही ताजमहल की चर्चा सुनता है तो लाल किले की चर्चा सुनता है तो सोचता है मैं भी इन्हें अवश्य देखूंगा। वह यह भी सोचता है कि अमुक नेता से मेरा परिचय हो जाये तो कितना अच्छा हो। कहने का तात्पर्य यह है कि वह सब कुछ जानना चाहता है परन्तु अपने आपको जानना कभी नहीं चाहता।

संसार में ऐसे कितने लोग हैं जो यह जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? क्यों आया हूँ? कहाँ मुझे जाना है? नशे का अर्थ यह है कि जिसमें व्यक्ति अपनी सुध-बुध खो बैठता है अर्थात् मैं कहाँ हूँ। कहाँ जाना है, क्या कहना है, क्या नहीं कहना है, यदि देखा जाये तो हर जीव नशे में है, अन्तर बस इतना है कि वहाँ शराब का नशा है और यहाँ अज्ञान का नशा है। इस नशे को जिसने उतार दिया वही व्यक्ति सफल है। आप कितने ही वैज्ञानिक बन जायें या कुछ और बन जायें, परन्तु आपने अपने को नहीं जाना तो कुछ नहीं जाना। जैसे एक कवि ने लिखा है–

जो पहचान सके न स्वयं को उसकी हर पहचान अधूरी है।
जिसमें तड़प प्रभु की न हो बंशी की वह तान अधूरी है।।

पीड़ा के आंचल में पलकर होता हर विश्वास सुनहरा ।
जो आँसुओं से न जन्मी हो ऐसी हर मुस्कान अधूरी है ।।

62. मानव में मानवता

मनुष्य उसी को कहना चाहिए जो प्रत्येक कार्य को समझ कर करे, बिना सोचे करे तो वह मनुष्य नहीं । परम पिता परमात्मा ने सबको मानव बनाया था परन्तु स्वयं मानव ने अपने को सैंकडों रूपों में बाँट लिया । किसी से पूछा आप कौन हैं ? तो कहेगा मैं मुसलमान हूँ । कोई कहेगा मैं हिन्दू हूँ, कोई सिक्ख और कोई अपने को ईसाई कहेगा । परन्तु यह कोई नहीं कहेगा कि मैं मानव हूँ । मानव ने यह सोचना ही बंद कर दिया हे कि मैं सबसे पहले मानव हूँ । बाद में कुछ और हूँ । विद्वानों ने नर और वानर इन दोनों में एक विशेष अन्तर बताया है, देखिये–

मनोयत्र गच्छति तत्र गच्छति वानराः ।
बुर्द्धियत्र गच्छति तत्र गच्छति नराः ।।

इसका भाव यह है कि मन में जो आया वही कर दिया । अर्थात् अच्छे बुरे का, धर्म-अधर्म का, सत्य-असत्य का विचार किये बिना जो मन में आया वह कर दिया । बुद्धि का प्रयोग नहीं करता उसे कहते हैं वानर । परन्तु जो मन में आते ही किसी काम को नहीं करता बल्कि उसके परिणाम को बुद्धि से विचार कर करता है उसे मनुष्य कहते हैं ।

जो बिना विचारे किसी काम को करे तो वह पशुओं का भी बड़ा भाई है । कई बातों में पशु-पक्षी मनुष्यों से बहुत अच्छे होते हैं । मनुष्य धर्म के नाम पर जब खून बहाता है तो ऐसा लगता है कि जानवर तो इससे लाखों गुणा अच्छा है । जब संसार के सारे मानवों का एक धर्म है वह है मानवता । वस्तुतः मानवता के अतिरिक्त

मानव का और कोई धर्म नहीं हो सकता है। एक कवि तो इस फिरकापरस्ती से खून बहता देखकर रो उठता है। जैसे–

कहीं मन्दिर कहीं मस्जिद की हम तख्ती लगा बैठे।
हमारा एक ही घर था हम ये क्या कर बैठे।।
परिन्दों के यहाँ फिरकापरस्ती क्यों नहीं होती।
कभी मन्दिर पे जा बैठे, कभी मस्जिद पे जा बैठे।।

63. वेद की महत्ता

महाराष्ट्र में संत रविदास नाम के बहुत ऊँचे साधक हुए हैं। उनके समय में दिल्ली में सिकन्दर लोदी का राज्य था। संत रविदास रात दिन प्रभु के प्रेम में डूबे रहते थे, जो समय खाली होता था उसमें वेदमंत्रों का उच्चारण करते रहते थे। एक बार वह कहीं से घूमते हुए दिल्ली आ गये तो उन्हें लोदी ने गिरफ्तार करवा लिया और कहा कि क़ुरान को पढ़ा करो और मुसलमन बन जाओ। यदि दुनियाँ में रहना है तो मुसलमान बनना ही पड़ेगा।

संत रविदास बड़े वीर संत थे। उन्होंने लोदी को साफ शब्दों में कह दिया कि मरना स्वीकार है परन्तु मुसलमान बनना स्वीकार नहीं क्योंकि मुसलमान बनकर भी मरना है और तुम जन्नत की बात करते हो तो मेरा मानना है कि मुसलमान बनने के बाद तो हज़ारों वर्षों तक मानव का चोला ही नहीं मिलेगा बल्कि सुअर और कुत्ते की योनियों में ही भटकना पड़ेगा। क्योंकि मुसलमान गाय जैसे उपकारी पशु को मार कर खाते हैं और गाय की हत्या तो सबसे बड़ा पाप है। तुम जन्नत की आशा कैसे करते हो?

लोदी ने क्रोध में आकर कई गालियाँ दी, और कहा कि इसे जल्लादों को सौंप दो, इसके टुकड़े करके कुत्तों के आगे डाल दो। जल्लाद आये और वधशाला के लिए लेकर चले। उस समय संत रविदास जी कह रहे थे कि ओ लोदी अगर जन्नत में जाना है तो वेद

पढ़ा कर, वेद से उत्तम पुस्तक संसार में कोई नहीं है । शेष जितनी भी पुस्तक हैं जो धर्म की पुस्तक कही जाती हैं वे सब धूर्त और स्वार्थी लोगों ने भोली जनता को बहका कर स्वयं धर्म गुरु बनने के लिए उनकी रचना की है । एक कवि के शब्दों में–

वेद धर्म है पूर्ण धर्मा, वेद अलावा और सब भर्मा ।
वेद धर्म की सच्ची रीति और सब धर्म कपोल प्रतीति ।।
वेद वचन उत्तम धर्म और निर्मल बांका ज्ञान ।
यह सच्चा मत छोड़कर मैं क्यूँ पढ़ूं क़ुरान ।।
क़ुरान का बहिश्त न चाहिए मुझको हूरे हज़ार ।
वेद धर्म त्यागूं नहीं जो गल चले कटार ।।
सत्य सनातन वेद है ज्ञान धर्म मर्यादा ।
जो न माने वेद को वृथा करे बकवाद ।।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)